www.thearyasamaj.org

ओ३म्

सत्यापन क्रमांक : RAJHIN/2015/60530

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

हिन्दी मासिक

वर्ष : ३ अंक : २५ १ जनवरी २०१७ जोधपुर (राज.) पृ.:३६ मूल्य १५० ₹ वार्षिक

कार्यालय :
महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास
जसवन्त कॉलेज के पास, मोहनपुरा, जोधपुर (राजस्थान)
फोन :
0291-2516655

www.thearyasamaj.org

आर्यसमाज सूरसागर का 62 वॉ वार्षिकोत्सव सम्पन्न की प्रमुख झलकियां

www.thearyasamaj.org

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । -ऋग्वेद ९।६३।५

सबको श्रेष्ठ बनाओ

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश का मुख्य प्रयोजन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के व्यक्तित्व, कृतित्व, व उनके द्वारा समस्त लिखित साहित्य तथा उनके सार्वभौमिक अद्वितीय कार्यों व सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार स्थापना व व्यवहार में साकार करने के लिये कार्य करना ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जोधपुर का मुखपत्र

महर्षि दयानन्द स्मृति प्रकाश

वर्ष : ३ अंक : २५

दयानन्दाब्द : १९३

विक्रम संवत् : मार्गशीर्ष

कलि संवत् ५११७

सृष्टि संवत् :१,९६,०८,५३,११७

मार्गदर्शक

पं. सत्यानन्दजी वेदवागीश,

सम्पादक मण्डल :

प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर

डॉ. सुरेन्द्रकुमार, हरिद्वार

डॉ. वेदपालजी, मेरठ

पं. रामनारायण शास्त्री, सिरोही

आचार्या सूर्यादेवी चतुर्वेदा

कार्यवाहक सम्पादक :

कमल किशोर आर्य

Email: sampadakmdsprakash@gmail.com

9460649055

प्रकाशक :

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, जसवन्त कॉलेज के पास, जोधपुर ३४२००१

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है । किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र जोधपुर ही होगा ।

Web.-www.dayanadsmritinyas.org.

वार्षिक शुल्क :१५० रुपये

आजीवन शुल्क : ११०० रुपये

(१५वर्ष)

अनुक्रमणिका

	क्या	कहाँ
१.	ईश्वर-स्तुति	४
२.	वेद वचन	५
३.	विष्णु के तीन पग	७
४.	परमात्मा.....	८
५.	सङ्क्रान्ति.....	१२
६.	आओ अपने घर चलें	१५
७.	पांच महायज्ञ	२२
८.	गंगा तट पर सिंहनाद..	२३
९.	आर्यसमाज के स्वर्णिम सिद्धान्त	२६
१०.	दयानन्द बावनी	३१
११	आर्यसमाज सूरसागर महोत्सव	३३

महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास

बैंक ऑफ बडौदा खाता संख्या-01360100028646

IFSC BARB0JODHPU

यह पांचवा अक्षर जीरो है

www.thearyasamaj.org

ईश्वर-स्तुति

प्रार्थना

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे ।

अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ।।४३।

-ऋग्वेद १।७।१४।४

व्याख्यान-हे इन्द्र-परमात्मन् ! "**त्वया युजा, वयं, जयेम**" आपके साथ वर्तमान,आपकी सहायता से हम लोग दुष्ट शत्रुओं को जीतें । कैसा है वह शत्रु, कि "**आवृतम्**" हमारे बल से घिरा हुआ । हे महाराजाधिराजेश्वर! "**भरे भरे अस्माकमंशमुदव**" युद्ध-युद्ध (प्रत्येक युद्ध) में हमारे अंश (बल), सेना का "**उदव**" उत्कृष्ट रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिससे क्षीण होके किसी युद्ध में हम पराजय को प्राप्त न हों, क्योंकि जिनको आपका सहाय है, उनका सर्वत्र विजय ही होता है । हे इन्द्र, "**मघवन्**" महाधनेश्वर! "**शत्रूणां, वृष्ण्या**" हमारे शत्रुओं के वीर्य, पराक्रमादि को "**प्ररुज**" प्रभग्न-रुग्ण करके नष्ट कर दे । "**अस्मभ्यं, वरिवः सुगं, कृधि**" हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को "**सुगम्**" सुख से प्राप्त कर, अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को ही प्राप्त हो ।।४३।।

स्तुति

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् । -ऋग्वेद १।७।१२।५

इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ।। ४४।।

व्याख्यान- हे मनुष्यो ! "**यः**" जो सब "**विश्वस्य जगतः**" जगत् (स्थावर), जड़, अप्राणी का और "**प्राणतः**" चेतनावाले जगत् का "**पतिः**" अधिष्ठाता और पालक है तथा "**प्रथमः**" जो सब जगत् के प्रथम सदा से है और "**ब्रह्मणे, गाः, अविन्दत्**" जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म,अर्थात् विद्वान् के लिए पृथिवीका लाभ और उसका राज्य है और जो "**इन्द्रः**" परमैश्वर्यवान् परमात्मा "**दस्यून्**" डाकुओं को "**अधरान्**" नीचे गिराता है तथा उनको "**अवातिरत्**" मार ही डालता है । "**मरुत्वन्तं, सख्याय, हवामहे**" आओ मित्रो ! भाई लोगो ! अपन सब सम्प्रीति से मिलके मरुत्वान्, अर्थात् परमानन्त बलवाले इन्द्र-परमात्मा को सखा होने के लिए प्रार्थना से अत्यन्त गद्गद होके बुलावें । वह शीघ्र ही कृपा करके अपन से सखित्व (परम मित्रता) करेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ।।४४।।

-आर्याभिविनय से

www.thearyasamaj.org

वेद-वचन

सभापति के गुण

सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।

वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ।। -१।३६।९

पदार्थः- हे **(तेजस्विन्)** विद्याविनय से युक्त ! **(मियेध्य)** प्राज्ञ ! **(अग्ने)** विद्वान् सभापते ! जो आप **(महान्)** बड़े-बड़े गुणों से युक्त **(असि)** हैं, सो **(देववीतमः)** विद्वानों को व्याप्त होने हारे आप न्याय-धर्म में स्थिर होकर **(संसीदस्व)** सब दोषों का नाश कीजिए और **(शोचस्व)** प्रकाशित हूजिए । हे **(विधूमम्)** धूमसदृश मल से रहित **(दर्शतम्)** देखने योग्य **(अरुषम्)** रूप को **(सृज)** उत्पन्न कीजिए।

भावार्थः- प्रशंसित बुद्धिमान् राजपुरुषों को चाहिए कि अग्नि के समान तेजस्वी और गुणों से युक्त हो और श्रेष्ठ गुणवाले पृथिवी आदि भूतों के तत्व को जानके प्रकाशमान होते हुए निर्मल, देखने योग्य स्वरूपयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करें।

तुझे प्राप्त करें

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् ।

अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ।। -३।३८

पदार्थः- जो यह **(सम्राट)** पकाश होने वाला **(अग्ने)** जगदीश्वर! आप **(अस्मभ्यम्)** उपासना करने वाले हम लोगों के लिये **(द्युम्नम्)** प्रकाशस्वरूप उत्तम यश वा **(सहः)** उत्तम बल को **(अभ्यायच्छस्व)** सब ओर से विस्तारयुक्त करते हो, इसलिए हम लोग (वसुवित्तमम्) पृथिवी आदि लोकों के जानने वा **(विश्ववेदसम्)** सब सुखों के जानने वाले आपको **(अभ्यागन्म)** सब प्रकार प्राप्त होवें।

भावार्थः- इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है । मनुष्यों को परमेश्वर वा भौतिक अग्नि के गुणों को जानने वा उसके अनुसार अनुष्ठान करने से कीर्ति यश और बल का विस्तार करना चाहिए।

लेखकों से निवेदन

इस पत्रिका का उद्देश्य महर्षि मिशन को प्रचारित-प्रसारित करना हैं। आर्य जगत के चिंतकों और लेखकों से निवेदन है कि ऋषि मिशन की पूर्ति में सहयोग हेतु अपनी रचनाओं को प्रकाशनार्थ भिजवाएं । रचनाएँ महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के पते पर या sampadakmdsprakash@gmail.com **के पते पर ईमेल से भी भेजी जा सकती हैं ।**

—संपादक

www.thearyasamaj.org

उसे भक्त ही पाते हैं

अग्ने मृड महा अस्यय आ देवयुं जनम् ।
इयेथ बर्हिरासदम् ।। २३ ।।

पदार्थ:- हे आगे चलने वाले **(अग्ने)** पूजनीय ईश्वर ! हमको **(मृड)** सुख दो **(महान्, असि)** आप महान् हो, सर्वव्यापक हो, अत: आप सबको सुखी कर सकते हो। इस प्रार्थना का उत्तर प्रभु इन शब्दों में देते हैं: **(देवयुं जनम्)** शुभ गुणों को चाहने वाले मनुष्य को **(अय:)** शुभावह विधि उत्तम सम्पपत्=कल्याण **(आ)** गच्छति=प्राप्त होता है। जो व्यक्ति शुभ गुणों को अपनाने का संकल्प करता है, वह अशुभ भावनाओं को अपने हृदय से उखाड़ता है। उन्हें दूर करके ही दिव्य गुणों के बीज का वहाँ वपन होता है। 'बृह' धातु का अर्थ उत्पाटन है, अत: दुर्गुणों का जिसमें से उत्पाटन हुआ, उस हृदय को भी 'बर्हि' नाम दिया गया है। शुद्ध हृदयाकाश में **(आसदम)** बैठने के लिये हे प्रभो ! आप **(इयेथ)** आते हो। शुद्ध हृदय में ही उस दिव्य ज्योति का दर्शन होता है। इस प्रकार सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्न करके सुख तो पाया ही, साथ ही प्रभु के दर्शन भी पा गये। प्रभु करें कि हम 'देवयुजन' =शुभ गुणों को चाहनेवाले जनों में से हों तथा प्रयत्न करके उत्तम गुणों को अपनाएँ।

भावार्थ:- परमात्मा अपने भक्त उपासकों को सुख देता हैं और प्राप्त होता हैं, अत: परमान्ददायक है, परन्तु देवयुं अर्थात् देव परमात्मा का यजन-पूजन चाहने वाले को ही, न कि अभक्त अनुपासक, नास्तिक आदि को । वह महान् है । यद्यपि वह सर्वान्तर्यामी होने और सर्वगत होने से सभी के हृदय में विराजता है, परन्तु देवयुं पुरुष के ही हृदय में उसको मिलता है, अन्य साधारण को नहीं ।

निर्भयता

यथा.द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यत: ।
एवा मे प्राण मा बिभे: ।। -२।१५।१

पदार्थ:-(यथा) जैसे **(च)** निश्चय करके **(द्यौ:)** आकाश **(च)** और **(पृथिवी)** पृथिवी-दोनों **(न)** न **(रिष्यत:)** दु:ख देते हैं और **(न)** न **(बिभीत:)** डरते हैं **(एव)** ऐसे ही **(मे)** मेरे **(प्राण)** प्राण ! तू **(मा बिभे:)** मत डर ।

भावार्थ:-यह आकाश और पृथिवी आदि लोक परमेश्वर के नियम-पालन से अपने अपने स्थान और मार्ग में स्थिर रहकर जगत् का उपकार करते हैं, ऐसे ही मनुष्य ईश्वर की आज्ञा मानने से पापों को छोड़कर और सुकर्मों को करके सदा निर्भय और सुखी रहता है ।

www.thearyasamaj.org

विष्णु के तीन पग

त्रीणि पदा वि चक्रमे, विष्णुर् गोपा अदाभ्यः ।

अतो धर्माणि धारयन् ।। -ऋग् ।२२।१८

ऋषिः मेधातिथिः काण्वः । देवता विष्णुः । छन्दः पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री ।

★ **(अदाभ्यः)** अहिंस्य, **(गोपाः)** रक्षक **(विष्णु)** विष्णु ने **(त्रीणि पदा)** तीन स्थानों पर **(वि चक्रमे)** चरण-न्यास किया हुआ है । **(अतः)** इससे [वह] **(धर्माणि)** धर्मों को **(धारयन्)** धारण कर रहा [है] ।

★ कथाकार कहते हैं कि वामन विष्णु ने अपने तीन पगों से त्रिलोकी को माप लिया था । यह विष्णु कौन है ? अधिदैवतमें आदित्य विष्णु है । वह द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी अथवा उदयाचल, मध्याकाश और अस्ताचल तीनों स्थानों में अपने रश्मि-रूप चरणों को रखता है । याज्ञिक प्रक्रिया में विष्णु यज्ञ है, वह प्रातः सवन, माध्ययन्दिनसवन और सायं-सवन और तीनों सवनों में व्याप्त है । अध्यात्म में चराचर में व्यापक भगवान विष्णु है । निराकार भगवान् के चरण-न्यासों का वर्णन अलंकारिक है । पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों स्थानों पर उसने अपने कदम रखे हुए हैं, इस कथन का आशय यह है कि वह सकल त्रिलोकी में व्याप्त है । इसी प्रकार मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा इन तीनों स्थानों पर भी चरण-न्यास किया हुआ है, अर्थात् इनमें भी वह व्याप्त है । तुम पूछोगे कि इन स्थानों पर चरण न्यास करके वह क्या करता है ? वह इन स्थानों पर विद्यमान प्रत्येक वस्तु के धर्मो को गुण-कर्म-स्वभाव को, धारण किये हुए है । वह पृथिवी को और पृथिवी पर विद्यमान पर्वत, नदी, सागर, वृक्ष, वनस्पतिआदिं के धर्मोको धारण किए हुए है। वह अन्तरिक्ष को और अन्तरिक्ष लोक में विद्यमान वायु, मेघ, विद्युत, चन्द्र आदि के धर्मो को धारण किए है। वह द्युलोक को और द्युलोक में विद्यमान सूर्य एवं समग्र तारामण्डल के धर्मों को धारण किये हैं। वह शरीर को और शरीर में विद्यमान ज्ञानेन्द्रियों,कर्मेन्द्रियों, नस-नाड़ियों आदि को धारण किये है । वह मन को और मन के संकल्प व्यापार को धारण किये है । वह आत्मा को और आत्मा के समग्र गुणों को धारण किये हुए है । वह जगत् के कारण शरीरों, सूक्ष्म-शरीरों और स्थूल-शरीरों में भी चरण-निक्षेप करके उनके धर्मों को धारण कर रहा है । उसके धारण के बिना इन सबके गुण-धर्म-व्यापार कभी के नष्ट हो चुके होते । वह 'गोपा' है, विश्व-रक्षक है । वह अदाभ्य है, अहिंस्य है । उसके त्रिलोकी में पग रखने के व्यापार को और रक्षा-कार्य को कोई हिंसित या विघ्नत नहीं कर सकता । वह विष्णु धन्य है, वह विष्णु स्तुत्य है, वह विष्णु श्लाध्य है । आओ, उसका गुण-कीर्तन कर हम स्वयं को गौरवान्वित करें।

www.thearyasamaj.org

"परमात्मा"

(वैदिक दर्शन- द्वितीय पुष्प) पं.चमूपति एम.ए

विश्वात्मा :

आत्मा और परमात्मा का विचार आपस में इतना मिला हुआ है कि शास्त्रों में प्रायः इन दोनों की विवेचना साथ-साथ की गई है । कई स्थलों पर यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि यहाँ आत्मा का वर्णन है या परमात्मा का ? प्रसिद्ध लोकोक्ति है-**यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे ।** जैसे शरीर में चेतनता देखकर उसमें किसी आत्मसत्ता का विचार उठता है, वैसे ही ब्रह्माण्ड में किसी नियामक व्यवस्थापक शक्ति का भान पाकर परमात्मा की सत्ता का अनुमान होता है ।

परमात्मा जीव नहीं :

विश्व का आत्मा (परमात्मा) इन शरीरियों में से एक नहीं हो सकता, क्योंकि शरीरी बहुत हैं और इनकी शक्ति सीमाबद्ध है । ये न तो सारे जगत् में व्यापक हैं, न इनका ज्ञान ही पूरा है । न ये बारी-बारी से शासन कर सकते हैं और न समूहरूप से शासक हो सकते हैं । ब्रह्माण्ड की व्यवस्था स्थिर है; वह व्यवस्थापक की स्थिरता चाहती है । यदि मुक्तों का शासन माना जाय तो ये बढ़ते-घटते रहते हैं । बन्धनावस्था से मुक्तावस्था में भोग का परिवर्तन तो होता है कि वहाँ आनन्द ही आनन्द मिलता है, परन्तु स्वरूप नहीं बदलता कि अल्प-शक्ति सर्व-शक्ति हो जाए । इसलिए आत्मा किसी अवस्था में परमात्मा नहीं हो सकता ।

वेद ने आत्मा के विषय में कहा है-

अवः परेण पर एनावरेण ।-ऋ. १।१६४।१७,१८

अर्थ- इस अवर (प्रतीयमान जगत्) से बड़ा है और उस बड़े (परमात्मा) से छोटा है ।

जीव से सूक्ष्म :

पर सूक्ष्म को भी कहते हैं (जो प्रतीति में परे हो) । प्रमाण के लिए उपनिषद् का यह मन्त्र देखो-

इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ।। -उपनिषद्

ऋषि दयानन्द का यह कथन कि परमात्मा आत्मा से और आत्मा प्रकृति से अधिक सूक्ष्म है, इसी वैदिक विचार पर आश्रित है ।

परमात्म-सिद्धि

१. जगत् का प्रवर्त्तक (Cosmological Argument)

परमात्मा की सिद्धि की जो युक्तियाँ आधुनिक तथा पुरातन तर्क में प्रयोग में लाई गई हैं उनका बीज

www.thearyasamaj.org

वेद में है । संसार को देखकर पहला प्रश्न यह होता है कि इसका विकास कैसे होता है ? विकास में नियम है, निश्चय है । सम्पूर्ण जगत् की प्रवृत्ति बुद्धिपूर्वक हुई प्रतीत होती है । इस विषय का विशेष विचार "उत्पत्ति" प्रकरण में करेंगे । यह बुद्धि प्रकृति की नहीं और जैसे हम ऊपर कह चुके हैं, किसी आत्मा या आत्मसमूह की भी नहीं । विभु आत्मा परमात्मा की ही है ।

पादोऽस्येहाभवत् ।

ततो विश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ।। -यजुः ३१।४

उस चतुष्पाद् पुरुष का एक पाद (बहिः प्रज्ञ) इस संसार में प्रकट हुआ । उससे चेतन-अचेतन सारा जगत् प्रवृत्त हुआ ।

(चतुष्पाद् शब्द की व्याख्या माण्डूक्योपनिषद् में की गई है । वहाँ देखो ।)

आर्य धर्म परमात्मा को जगत् का निमित्त-कारण मानता है, उपादान नहीं । उपादान मानने से चेतन से अचेतन और से चेतन विकसित होने की समस्या का कोई सुलझाव नहीं हो सकता । इस अंश में हमारी प्रवृत्ति की युक्ति पश्चिमीय युक्ति से, जो क्रिश्चियन मत पर आश्रित है, भिन्न है । पाश्चात्य तर्क यहाँ ठहर जाता है । हमारी यही युक्ति आगे चलती है ।

धारक :

प्रवृत्ति के पश्चात् धृति का प्रश्न है । संसार के विविध पदार्थ एक-दूसरे की आकर्षण आदि शक्तियों से स्थिर हैं । परन्तु यह आकर्षण भी तो बुद्धिपूर्वक कार्य कर रहा है । सूर्य ने पृथिवी को और पृथिवी ने सूर्य को आकर्षण करना किसी की नियामकता से स्वीकार किया है । इनमें यह धर्म कैसे आया ? इस धर्म का संकेत ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी की ओर है ।

वेद कहता है-

स्कम्भेनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः ।

स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्च यत् ।। -अ. १०।८।२

अर्थ- धारणकर्ता परमात्मा में आकाश और पृथिवी (सूक्ष्मतम भूत आकाश और स्थूलतम भूत पृथिवी का नाम-निर्देश कर सारे भूतों की ओर संकेत है) अलग-अलग थमे हुए खड़े हैं । उसी धारणकर्ता में प्राण लेने और आँख झपकानेवाला आत्मवान् जगत् है ।

अर्थात् चेतन-अचेतन का आधार प्रभु है ।

निवर्त्तक : जहाँ प्रवृत्ति है, धृति है, वहाँ निवृत्ति भी है । प्रत्येक पदार्थ अपने मूल से परिणाम पाकर कार्यरूप धारण करता है और उससे पीछे फिर उसी कारण में लीन हो जाता है, जेसे पानी से बादल और बादल से फिर पानी बनता है । यह चक्र जैसे अलग-अलग पिण्डों में देखने में आता है, ऐसे ही ब्रह्माण्ड की मर्यादा में भी दृष्टिगोचर होता है । कम-से-कम इसका अनुमान इसी प्रकार हो सकता है । यह क्षय या निवृत्ति भी उस

www.thearyasamaj.org

व्यापक बुद्धि के अधीन है।

कालेनोदेति सूर्यः काले निविशते पुनः। – अ. १९।५४।१

अर्थः- संख्याकर्ता परमात्मा से सृष्टिकाल में सूर्य उत्पन्न होता है और प्रलय-काल में उसी में लीन हो जाता है।

प्रवृत्ति और निवृत्ति दो विरोधी धर्म हैं। इनका समय और मर्यादापूर्वक व्यवहार में आना जड़ प्रकृति द्वारा असम्भव है। प्रकृति का स्वतन्त्र धर्म या तो प्रवृत्ति हो सकता है, या निवृत्ति। संसार स्वतन्त्रहो तो उसकी गति यान्त्रिक (Mechanical) होनी चाहिए, वह या बनता जाए या बिगड़ता-या सृष्टि ही सृष्टि होती जाए या प्रलय-ही-प्रलय। सृष्टि होते-होते प्रलय और प्रलय होते-होते सृष्टि की प्रवृत्ति कौन करता है ? कोई नियामक। वह नियामक चेतन होना चाहिए और फिर उस चेतनता का प्रभाव विश्वव्यापी होना आवश्यक है।

"वेदान्तदर्शन" में उपरिलिखित सारे प्रकरण को एक सूत्र में कहा है-**जन्माद्यस्य यतः** (१।१।२) अर्थात् ब्रह्म वह है जिससे इस (जगत्) का जन्म, धारण और विनाश होता है।

अंग्रेजी में इस युक्ति को Comological Argument कहते हैं। परन्तु पाश्चात्य तर्क में सृष्टि और प्रलय की चक्र-परम्परा का विचार न होने से इस युक्ति का अभिप्राय केवल प्रवृत्ति की युक्ति रहता है।

रचयिता : Teleological Argument

दूसरी युक्ति रचना या Design की है। इस अंग्रेजी भाषा में Teleological Argument कहते हैं। बुद्धिपूर्वक धृति का वर्णन करते हुए हम इस युक्ति की ओर संकेत कर चुके हैं, परन्तु तार्किकों की परिभाषा को दृष्टि में रखते हुए उस युक्ति पर संक्षेप से अलग विचार कर लेने में हानि नहीं।

प्रत्येक विज्ञान (**Science**) बताता है कि संसार की स्थिति नियमों पर है। इन्हीं नियमों का संग्रह-भूत ही तो विज्ञान है। इन्हीं नियमों के आश्रय से सब कलाओं,सब धन्धों का व्यवहार चलता है। यदि कृषक बीज के पृथिवी में डाले जाने के पीछे उसके विशेष सेचन आदि संस्कारों के अनन्तर उसके फलस्वरूप में परिणत होने में सन्दिहान हो तो कृषि-कला प्रवृत्त ही न हो। यही नियम कृषि-विज्ञान (**Science of Agriculture**) कहलाते हैं। यही अवस्था अन्य विज्ञानों की है। विज्ञान नाम है नियमों का। ब्रह्माण्ड में भौतिक पदार्थ अन्य भौतिक पदार्थों से, और फिर सारा भौतिक प्रपञ्च प्राणिजगत् से एक सूत्र से बँधा हुआ है। सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो प्रत्येक क्षेत्र की रचना निराली प्रतीत होती है। कैसा कौतुक है कि इस सब रचनाओं की फिर एक व्यापक रचना है। जगत् के अंग-अंग की, और फिर इस सम्पूर्ण अंगी की, ध्वनि है संगठन। यह संगठन, यह रचना सर्वज्ञ रचयिता के बिना और किसकी हो सकती है ?

यो विद्यात् सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात् स विद्यात् ब्राह्मणं महत्॥–अ.१०।८।३७

अर्थः- जो उस अलग-अलग (प्रत्येक विज्ञान के) क्षेत्र में फैले हुए सूत्र को जानता है और फिर

www.thearyasamaj.org

उस सूत्र के सूत्र (व्यापक रचना) को जानता है वह परब्रह्म को जानता है ।

संश्लेष :

विज्ञानों और शास्त्रों का अपना-अपना संश्लेष (Synthesis) है । इन सब संश्लेषों (Syntheses) का एक परम संश्लेष (Highest Synthesis) है । इसे ब्रह्मविद्या कहते हैं । इसी संश्लेष का वर्णन उपनिषदों ने इन मनोमोही शब्दों में किया है कि इसके जानने से सब कुछ जाना जाता है । विज्ञान को हेय नहीं बताया, किनतु उसका ध्येय (Ideal) और उत्कृष्ट कर दिया है । विज्ञान का परम संश्लेष (Highest Synthesis) का ''सूत्रस्य सूत्र'' एक है ।

'वेदान्त दर्शन' के दूसरे अध्याय के दूसरे पाद में इस विषय की अच्छी विवेचना की गई है । विस्तार के लिए वहाँ देखो ।

कर्मफल-संयोजक : Moral Argument

तर्क की अन्तिम युक्ति धर्म की या आचार की युक्ति है । उसे अंग्रेजी में Moral Argument कहते हैं । आचार का आधार परमात्म-विश्वास है । योगी फल की आकांक्षा से ऊँचा हो जाता है, परन्तु यदि कृति का फल ही न हो तो कोई कर्म करने के लिए प्रेरणा किस भाव से पाए ? भलाई का फल स्वयं भलाई ही सही, सदाचार का लाभ केवल आत्मोन्नति ही हो, तो भी इस फल का सफलीकर्ता चाहिए ।

वेद कहता है- **सविता सत्यधर्मा ।** -अ. १०।८।४२

अर्थात् प्रेरक प्रभु का धर्म अटल है । उसने सत्य= Righteousness को धर्म बनाया है ।

सत्य धर्म है, कार्य इस प्रकार होना चाहिए, ऐसा करना कर्त्तव्य है, उसकी प्रथम प्रेरणा कहाँ से हुई ? वरुण-देवताक सब सूक्त परमात्मा के इसी गुण का प्रतिपादन करते हैं।

आर्य तर्क की विशेषता यह है कि इसने आध्यात्मिक (Metaphysical) और आधिभौतिक (Physical) नियमों को एक ही लड़ी में पिरो दिया है । वही व्यवस्था जो पृथिवी में डाले हुए बीज को समय आने पर फल बनाती है, किए हुए कर्म को समय आने पर परिपाक भी देती है ।

भगवान् गीता में कहते हैं- **नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।**

यहाँ किया हुआ नष्ट नहीं होता । परिपाक का प्रतिबन्धक कोई नियम वा कारण नहीं ।

इसी कारण से बादरायण मुनि ने वेदान्त में रचना और आचार की युक्ति को एक साथ एक ही सूत्र में **शास्त्रयोनित्वात्** कहकर बड़ी सुन्दरता से ग्रथित किया है । हमारी परिभाषा में शास्त्र सत्य प्रतिपादित करने वाली किसी भी व्यवस्था को कहते हैं । भौतिक विज्ञानभी शास्त्र है और आध्यात्मिक विज्ञान भी । बादरायणकेसूत्र का अभिप्राय यह है कि जहाँ इन शास्त्रों के नियमों को संसार की रचना में व्यवहार-रूप में क्रियात्मक भाव देने वाला परमात्मा है, वहाँ इन नियमों का प्रथम ज्ञान भी प्रभु स्वयं देते हैं । वेदान्त-शास्त्र की यह नई युक्ति है जो पाश्चात्यों को नहीं सूझी । इसका विचार हम ''**ज्ञान का प्रारम्भ**'' नामक प्रकरण में करेगे । (क्रमशः)

www.thearyasamaj.org

''सङ्क्रान्ति''

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू,
अग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी।

यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड गोल है। इसके अन्दर दिखाई देने वाले, सूर्य, चन्द्र, बुध पृथिवी आदि सभी ग्रह नक्षत्र सभी तारे गोल हैं, प्रत्येक पदार्थमात्र, कणमात्र गोल है, इसीलिए इनका अध्ययन जिस विधा या विद्या के माध्यम से किया जाता है उसे भूगोल विद्या व खगोल विद्या कहते हैं। इसका दूसरा नाम ज्योतिषशास्त्र भी हैं। भूगोल खगोल शब्द भी इस बात के परिचायक हैं कि संसार का प्रत्येक कण गोल हैं। संसार का प्रत्येक कण गोल होने के साथ दैवी सिद्धान्त (ईश्वरीय नियम) के अनुसार गतिशील है, और अपने से बड़े पदार्थ या ग्रह नक्षत्र की परिक्रमा कर रहा है, पूजा कर रहा है, आदर सम्मान कर रहा है। यह पूजा आदर-सत्कार भी एक प्रकार का यज्ञ हैं। इस यज्ञ, आदर-सत्कार, पूजा, परिक्रमा या गति के कारण ही यह संसार बन रहा है, बढ़ रहा है, चल रहा है, पल रहा है।

इस विशाल ब्रह्माण्ड के एक सौरमण्डल, जिसमे हमारी पृथिवी है, से हम सामान्यतौर पर परिचित हैं। ईश्वरीय नियमानुसार पृथिवी अपनी कक्षा में रहते हुए अपनी धुरी पर घूमते हुए सूर्य की परिक्रमा कर रही हैं। पृथिवी के द्वारा की जाने वाली परिक्रमा के परिणामस्वरूप वर्ष ऋतु और मास का निर्माण होता है तथा पृथिवी के अपनी धुरी पर घूमने के कारण रात-दिन बनते है।।

जितने समय में पृथिवी सूर्य की एक परिक्रमा करती है उसे एक सौर वर्ष कहते हैं, और लम्बी वर्तुलाकार जिस परिधि पर पृथिवी परिभ्रमण करती है उसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं। भूगोल खगोल के अध्येता ज्योतिषशास्त्रियों ने ईश्वरीय सिद्धान्त तथा ग्रह-नक्षत्रों की परिभ्रमण परिधि=क्रान्तिवृत्त को समझने के लिए बारह (१२) भागो में बाँटकर, आकाश में स्थित नक्षत्र समूह से मिलकर बनी हुई कुछ मिलती जुलती आकृति वाले पदार्थों के नाम पर उनके बारह (१२) नाम रख दिए। इन्हीं बारह भागों या आकृतियों की राशि के नाम से भी जाना जाता है, जो इस प्रकार है- १.मेष, २. वृष=वृषभ, ३. मिथुन, ४.कर्क, ५. सिंह, ६.कन्या, ७. तुला, ८. वृश्चिक, ९. धनु, १०. मकर, ११. कुम्भ और १२. मीन।

क्रमण, सङ्क्रमण का अर्थ चलना, पार करना, फैलना है। जिस समय पृथिवी एक राशि को

www.thearyasamaj.org

पारकर दूसरी राशि में प्रवेश करती है, संक्रमणकाल, सङ्क्रान्तिकाल या सङ्क्रान्ति कहते हैं। इस प्रकार एक परिभ्रमण परिधि में १२ राशि होने के कारण तथा एक परिक्रमा एक वर्ष में पूरी होने के कारण एक वर्ष में बारह (१२) सङ्क्रान्ति होती हैं। जिस प्रकार लकड़ी को काटने में अन्तिम चोट, जिसके द्वारा वह लकड़ी कट कर अलग हुई है, जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही पहली और मध्य की चोट भी महत्वपूर्ण है; ठीक उसी प्रकार पृथिवी के द्वारा की जाने वाली इस सूर्य परिक्रमा में प्रत्येक पग = कदम और सङ्क्रान्ति महत्वशालिनी है; अतः बारह सङ्क्रान्तियों का बराबर महत्व है, अपना-अपना महत्व है।।

जिस प्रकार पृथिवी के द्वारा सूर्य की एक परिक्रमा काल को एक सौरवर्ष कहते हैं उसी प्रकार सङ्क्रान्ति को भी सौर सङ्क्रान्ति कहते हैं। रेल या बस में यात्रा करते समय, रेल में बैठे होने के कारण हमें रेल चलती नहीं दिखाई देती, अपितु रेलमार्ग के समीपस्थ वृक्ष पवतादि दौड़ते प्रतीत होते हैं; उसी प्रकार पृथिवी पर रहने के कारण हमें पृथिवी चलती घूमती नहीं दिखाई देती, प्रत्युत सूर्य चलता हुआ प्रतीत होता है, जबकि पृथिवी अपनी धुरी पर घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करती हैं। इस प्रतीति के कारण ही लोक में उपचार से (लोकोपचार से) पृथिवी सङ्क्रमण को सूर्य संक्रमण कहते हैं। अयन शब्द का अर्थ है - 'गति'। छह माह तक सूर्य क्रान्ति वृत्त पर उत्तर की ओर गति करता हुआ, उदर होता हुआ दिखाई देता है और छह माह तक क्रान्तिवृत्त पर दक्षिण की ओर उदय होता हुआ प्रतीत होता है। सूय्र की उत्तर की ओर उदय होने वाली छह माह की अवधि को उत्तरायण और दक्षिण की ओर उदय होने की अवधि को दक्षिणायन कहते हैं।

अपनी धुरी या कक्षा में परिभ्रमण के कारण सूर्य और पृथिवी के मध्य की दूरी बढ़ती घटती रहती हैं। उत्तरायण काल में दूरी घटने से सूर्य की किरणें पृथिवी पर शीघ्र आती हैं तथा देर तक रहती है, इसी कारण इस अवधि में दिन बढ़ता है बड़ा हाता है, रात्रि घटती है छोटी होती है। दक्षिणायन समयावधि मे सूर्य और पृथिवी पर देर से पहुँचती है तथा कम समय तक रहती है इसीलिए दक्षिणायन की समयावधि में रात्रि बढ़ती है, बड़ी होती है। दिन घटता है छोटा होता है। इस क्रान्तिवृत्त पर गति करते हुए, परिभ्रमण करते हुए पृथिवी एक दिन दक्षिणगोलार्ध के अन्तिम छोर पर अर्थात् दक्षिणी ध्रुव पर होती है, उस समय सूर्य और पृथिवी की दूरी अधिक होने के कारण दिन सबसे छोटा और रात्रि सबसे बड़ी होती हैं। उस समय रात्रि लगभग १४ घण्टे की और दिन १० घण्टे का रह जाता हैं। दिन के बढ़ने व घटने के कारण गर्मी और सर्दी बढ़ती घटती रहती हैं। कान्तिवृत्त पर पृथिवी के परिभ्रमण

www.thearyasamaj.org

के समय वर्ष में दो बार वह स्थिति भी आती है जब पृथिवी उस बिन्दु पर पहुँच जाती है जहाँ रात और दिन, दोनों समयावधि की दृष्टि से बराबर १२-१२ घण्टे के होते हैं। इस बिन्दु पर पहुँचने का समय बसन्त और शरद् ऋतु में आता है और इसी समय नवरात्रि के रूप में उत्सव भी मनाया जाता है। एक और सङ्क्रान्ति काल या वर्ष में बारह सङ्क्रान्ति होती है। बारह ही मास होते हैं तथा दो मास की एक ऋतु के नियम से छह ऋतु होती हैं। इस अधोलिखित तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है-

सङ्क्रान्ति	माह	ऋतु	लोकोपचार ऋतु
१. मेष	चैत्र	बसन्त	गर्मी
२.वृष	वैशाख		
३.मिथुन	ज्येष्ठ	ग्रीष्म	
४.कर्क	आषाढ़		
५. सिंह	श्रावण	वर्षा	वर्षा
६.कन्या	भाद्रपद		
७.तुला	अश्विन	शरद्	
८.वृश्चिक	कार्तिक		
९. धनु	मार्गशीर्ष	हेमन्त	सर्दी
१०.मकर	पौष		
११.कुम्भ	माघ	शिशिर	
१२.	फाल्गुन		

शीत की अधिकता से मकर का, तपन की अधिकता से कर्क का तथा समानकाल, सुहावना मौसम होने के कारण वृष और मीन का महत्व है। प्रत्येक सङ्क्रान्ति अपने से पहली सङ्क्रान्ति के साथ मिलकर पूर्णता को प्राप्त होती हैं। क्रान्तिवृत्त पर पृथिवी के परिभ्रमण काल में पृथिवी के मेष आदि राशि में प्रवेश के समय हम सङ्क्रान्ति के नाम से उत्सव मनाते हैं।

-पं. रामनारायण शास्त्री

www.thearyasamaj.org

गतांग से आगे

आओ अपने घर चलें

(सत्यानन्द वेदवागीश)

'महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति' (कठो.१.२.२२) इस महत्तम सर्वव्यापक परमात्मा को साक्षात् करने के बाद धैर्यशाली मनुष्य शोक को प्राप्त नहीं होता है। 'विभूरसि प्रभूरसि' (बृहदा.६.३.४) हे परमेश्वर ! आप सर्वव्यापक हो और स्वयं सत्तावान हो। 'एको देवःसर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा' (श्वेता.६.११) वह देवाधिदेव प्रभु सब जड़ चेतन पदार्थों में अदृश्यरूप में वर्तमान है, सर्वत्र व्यापक है और सब प्राणियों की आत्मा में भी विद्यमान है ।

ईश्वर सर्वान्तर्यामी है । 'अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽनतर्यामी'-जो सब प्राणी और अप्राणी रूप जगत् के भीतर व्यापक होके सबका नियन्त्रण करता, इसलिये उस परमेश्वर का नाम अन्तर्यामी है ।

ईश्वर सर्वज्ञ है-वह सबको जाननेवाला है। 'सनो बन्धुर्जनिता सविधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा'(य.३२.१०)-वह परमात्मा अपने लोगों का भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, वह सब कामों का पूर्ण करने हारा और सम्पूर्ण लोकमात्र तथा नाम, स्थान जन्मों को जानता है। 'यः सर्वज्ञः सर्वविद् यस्यैष महिमा भुवि' (मुण्डको.२.२.७) वह परमेश्वर सर्वज्ञ है-सबको जानने वाला है और सबको प्राप्त किया हुआ है, जिसकी कि जगत में इतनी महिमा है।

ईश्वर अजर है-क्योंकि ईश्वर अजन्मा है और शरीर रहित है, अतः उसमें जरा= बुढ़ापा भी कभी नहीं आता । "स वा एष महानज आत्माऽजरः" (बृ.उ.४.४.२५) वह परमात्मा महान् अजन्मा और अजर है । 'यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं पश्चेति' (प्रश्नोप.५.७) जो कि वह ब्रह्म परमशान्त, अजर, अमृत, निर्भय और श्रेष्ठ है ।

ईश्वर अमर है-ईश्वर शरीर रहित है अतः उसकी मृत्यु भी कभी नहीं होती है। "सवा एष....अमरोऽमृतोऽभयः" (बृउ.४.४.२५) वह परमात्मा अमर है कभी उसकी मृत्यु या नाश नहीं होता और वह भय रहित है ।

ईश्वर अभय है-उसे किसी से कभी भी किसी प्रकार का भय नहीं है । ईश्वर से अधिक शक्तिशाली कोई भी नहीं है । जिससे कि उसको भय हो । 'एतदमृतमभयमेतत् परायणम्' (प्रश्नोप. १.१०) यह परमात्मतत्त्व मृत्युरहित है, अभय=भयरहित है और यही हमारे जीवन की परम गति है ।

ईश्वर नित्य है-परमेश्वर सदा से था, अब है और आगे भी सदा रहेगा। 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । यत् कारणं सांख्य योगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः" (श्वेताश्व.६.११) वह परमेश्वर सब नित्य पदार्थों में=जीवात्माओं और प्रकृति से भी परम नित्य है, चेतनों में परमचेतन हे और जो अकेला ही सब जीवों के हित के लिए उनकी कामनाओं को पूर्ण करता है। वह परमात्मा जगत्

www.thearyasamaj.org

निर्माण का निमित्त कारण है और सांख्य से योग के द्वारा प्राप्त करने योग्य है, उस परमदेव को जानकर मनुष्य सब बन्धनों से छूट जाता है ।

ईश्वर पवित्र है-परमात्मा पवित्र है, शुद्ध है । वह आन्तरिक और बाह्यमलों से रहित है। योध्यानिनामात्मनः पुनाति पवित्रीकरोति स पवित्रः- जो ध्यानी मनुष्यों को पवित्र करता है, इस कारण भी परमेश्वर पवित्र कहलाता है। 'कर्त्तरि चर्षिदेवतयोः (अष्टा.३.२.१८६) य ऋषति जानाति सर्वं चराचरं जगत् स ऋषिः परमेश्वरः जो सब चेतन-अचेतन जगत् को जानता है उस परमात्मा को ऋषि कहते हैं। 'ऋषिँ गतौ (तुदा. ७) 'ऋषिर्विप्रः काव्येन' (ऋ.८.७६.१) वह परमेश्वर अपने वेदरूपी श्रव्यकाव्य और सृष्टिरूपी दृश्य के कारण ऋषि है और परम मेधावी है । 'पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते' (ऋ.६.८३.१) हे ब्रह्माण्ड प्रकृति-जीवात्मा-वेद के स्वामी प्रभो ! आपका पवित्र स्वरूप सर्वत्र विस्तृत है-व्यापक है । जो तत्त्व अभौतिक है उनके स्वरूप में और उनमें कोई भेद नहीं होता है, सो प्रभु का स्वरूप अर्थात् प्रभु सर्वत्र व्यापक है । 'स पर्यगात्....शुद्धमपापविद्धम्' (य. ४०.८) वह सर्वव्यापी परमेश्वर शुद्ध है और सब प्रकार के पापों से रहित है।

ईश्वर सृष्टिकर्ता है-वह परमेश्वर ही इसअति विशाल सृष्टि का रचयिता है । 'येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि.....सजनास इन्द्रः' (ऋ.२.१२.४) जिस परमेश्वर ने इन समस्त निरन्तर गतिशील लोक लोकान्तरों को रचा है, हे मनुष्यो ! वह इन्द्र नाम से भी जाना जाता है । 'सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः । जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ।।' (ऋ.६.६६.५)-वह सर्वोत्पाद परमेश्वर सर्वत्र गतिशील है-पहुँचा हुआ है और पवित्र करने वाला है। वही बुद्धियों का प्रेरक है । वही द्युलोक का रचयिता है। वही भूलों का, अग्नित्वका, सूर्य लोकों का, विद्युत का और वायु का भी रचयिता वही है । 'ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता' (मुण्ड.१.१.१.)-वह सबसे महत्तम प्रभु जड़ चेतन देवों से पहले से सत्तावान था, वही सम्पूर्ण संसार का कर्ता=रचयिता है और सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरों का रक्षक भी है ।

ईश्वर उपासना करने योग्य है- जिसके संसर्ग में मनुष्य रहता है, उसके गुण अथवा अवगुण उस मनुष्य में संक्रान्त हो जाते है-''संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति'' । परमेश्वर नित्य आनन्दमय और पवित्र है, उसकी उपासना करने से-उसके समीपस्थ होने से-ध्यानयोग के द्वारा उसमें तल्लीन होने से मनुष्य को अवश्य आनन्द की अनुभूति होती है ।

इस प्रकार अपने असली चिराति चिरकालिक वासयोग्य असीम ब्रह्माण्ड (+ब्रंह्म) रूपी घर पहुँचने के अन्तिम उपाय-'इन्द्रं गच्छन्तः'-परमैश्वर्यशाली प्रभु को जानते हुए और प्राप्त करते हुए के सन्दर्भ में, ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों को-'सच्चिदानन्दस्वरूप, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार,अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी-सर्वज्ञ,अजर, अमर,अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्ता और उपासनीय है, इस रूप में जानने का प्रयत्न किया। अब उसे प्राप्त करना है-पाना है ।

प्रभु प्राप्ति का उपाय है योग 'युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः। अग्ने

www.thearyasamaj.org

ज्योतिर्न्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ।।' (य.११.१) सविता=ईश्वर के गुणादि के ज्ञान से प्रेरित-उत्साहित हुआ मनुष्य, परमतत्व परमात्मा की प्राप्ति के लिए पहिले मन और बुद्धि आदि को बाह्य वृत्तियों से निरूद्ध करता हुआ, परमज्ञानी और परमगति परमेश्वर के प्रकाश का प्रकाशमय प्रभु का साक्षात्कार करके भौतिक बन्धन से पुनरपि जन्मग्रहण से ऊपर उठ जाता है-बन्धन मुक्त हो जाता है। फलितार्थ यह हुआ कि योगेनात्मनि विन्दति योग के द्वारा ही भक्त मनुष्य उस प्रभु को अपने आत्मा में पा लेता है-उसका साक्षात् दर्शन कर लेता है । "स्वाध्याय-योगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते"। (योग.व्या.भा.१.२८) स्वाध्याय के द्वारा ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव-स्वरूपों के ज्ञान के पश्चात् योगाभ्यास से मनुष्य के आत्मा में परमात्मा साक्षात् हो जाता है ।

योग के आठ अंग है-'यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगनि'(यो.द.२.२६)-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समधि।। यम पांच है-'अहिसासत्यास्तेम ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः(यो.द.२.३०)अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ।

अहिंसा-सब प्रकार से सब कालों में सब स्थानों में प्राणिमात्र को दुःख न देना अहिंसा है । किसी प्राणी के प्रति मारने की भावना रखना, ईर्ष्या करना और क्रोध करना आदि सभी व्यवहार हिंसा कोटि में आ जाते हैं । इस हिंसा मूलक द्रोह, ईर्ष्या, क्रोध आदि को छोड़ देने वाले मनुष्य के प्रति सामने वाले द्रोही, क्रोधी मनुष्य भी अपना द्रोह और क्रोध छोड़ देते हैं। "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधै वैरत्यागः (यो.द.२.३५)-अहिंसा वृत्तिका पूरा अभ्यास हो जाने पर उस मनुष्य के समक्ष दूसरे प्राणी भी अपना वैरभाव त्याग देते हैं।

स्वामी दयानन्दजी महाराज के जीवन में अनेक ऐसे अवसर आये जब स्वामीजी द्वारा पाखण्डों और मूर्ति पूजा आदि अन्धविश्वासों के खण्डन से क्रुद्ध हुए कुछ लोग उन्हें मारने तक के लिये उद्यत हुए, किन्तु स्वामीजी के दयाभाव और निर्वैरभाव के कारण वे लोग स्वामी के भक्त बन गये ।

सोरों की घटना है-'एक दिन स्वामीजी उपदेश कर रहे थे और बीसियों लोग दत्तचित्त होकर श्रवण कर रहे थे । उस समय वहाँ एक हट्टा-कट्टा पहलवान सा जाट आ गया । एक मोटा सोटा कन्धे पर रखे सभा को चीरता हुआ वह सीधा स्वामीजी की ओर बढ़ा । उसका चेहरा मारे क्रोध के तमतमा रहा था । आँखें रक्तवर्ण थी । भौंहे तन रही थी औरमाथे पर त्योरी चढ़ी हुई थी । होठों को चबाता और दांतों को पीसता हुआ वह बोला- "अरे साधु ! तू ठाकुर पूजा का खण्डन करता है, श्री गंगामैया की निन्दा करता है और देवता के विरूद्ध बोलता है । झटपट बता तेरे किस अंग पर सोटा मारकर तेरी समाप्ति कर दूँ" ये वचन सुनकर एक बार तो सारी सभा विचलित हो गई, परन्तु स्वामीजी की गम्भीर में रत्तीभर भी न्यूनता न आई । उन्होंने शान्त भाव से मुस्कराते हुए कहा-"भद्र ! यदि तेरे विचार में मेरा धर्म प्रचार करना कोई अपराध है, तो इस अपराध का प्रेरक मेरा मस्तिष्क ही है । यही मुझे खण्डन कीबातें सुझाता है, अतः यदि तू अपराधी को दण्ड देना

www.thearyasamaj.org

चाहता है, तो मेरे सिर पर सोटा मार इसी को दण्डित करा'' इन वाक्यों के साथ ही स्वामीजी ने अपने नेत्रों की ज्योति उसकी आंखों में डालकर उसे देखा । जैसे बिजली कौंध कर रह जाती है, धधकता हुआ अंगारा जलधारा-पाने से शांत हो जाता है, वैसे ही तत्काल वह बलिष्ठ व्यक्ति ठण्डा हो गया । वह श्री चरणों में गिर पड़ा और अविरल अश्रुमोचन करता हुआ अपराध क्षमा करने की याचना करने लगा।'' (देवर्षि दयानन्द चरित पृष्ठ ६३-६४) ।

सिद्धान्तअथवा धर्म के विषय में भी अहिंसा का पालन आवश्यक है और लाभकारी भी । यदि आपके सिद्धांतों की कोई हसी उड़ावे अथवा आपको चिड़ावे, तो उस समय उस पर क्रोध करना अथवा प्रत्युत्तर में उसकी निन्दा आदि करना भी हिंसा की कोटि में आता है। उस समय शान्त रहकर उसे सहनकरना चाहिये । आपकी शान्ति के कारण कालान्तरों में वे आपके सिद्धान्तों के प्रशंसक भी बन सकते हैं । इस प्रसंग में एक घटना का विवरण द्रष्टव्य है-

''फर्रुखाबाद में पुत्तुलाल शुक्ल पहलवान और नारायण दुबे आर्यसमाजियों से बहुत चिड़ते थे । जब स्वामीजी संवत् १६३६ में फर्रुखाबाद में आये थे तो उनके चले जाने के पश्चात् कुछ दिन तक पौराणिक उत्तेजित रहे । एक दिन उपर्युक्त शुक्ल और दुबे को चौबे तोताराम जो आर्यसमाजिक थे,मार्ग में मिल गये । और दोनों व्यक्तियों ने उन्हें चिढ़ाना आरम्भ किया । चौबे तोताराम ने ईंट का उत्तर पत्थर से दिया तो दोनों ने मिलकर उसे पीटा। चौबेतोताराम ने उन दोनों पर स्काट साहब के इजलास में अभियोग चलाया, जिसका परिणाम हुआ कि शुक्लाजी पर २०)रू. अर्थ दण्ड और दुबेजी को तीन मासका कारावास हुआ।और दोनों को दो-दो सौ रूपये के मुचलके और जमानत दो साल तक नेक चलन रहने की देनी पड़ी।

जब स्वामीजी इस बार आये तो स्काट साहब ने उनसे कहा कि आपके एक सेवक को पीटने पर दो लोगों को पर्याप्त दण्ड मिल गया है । महाराज ने स्काट साहब की बात पर प्रसन्नता प्रकट नहीं की, जिसकी उन्हें आशा थी और उनसे कहाकि सन्यासी तोअपने घातक को पीड़ा पहुँचती देख कर प्रसन्न नहीं होते । और आर्यसमाजियों से असन्तोष प्रकट करते हुए कहा कि यदि तुम लोग इस प्रकार मुकद्दमा बाजी करोगे तो धर्म और देश का क्या सुधार कर सकोगे । जिन्हें सन्मार्ग पर लाना है, उन्हें कैद में पहुँचाना सुधार की शैली से बाहर है। घूंसे का बदला घूंसा नहीं है । यदि पौराणिक भाई तुम पर कोई अत्याचार करें तो उचित सीमा तक उसे सहना चाहिये, जब उन्हें ज्ञान होगा, तो वे स्वयं पश्चाताप करेंगे और तुमसे प्रेम प्रकट करेंगे (महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र भाग २ पृष्ठ. २३६-२४०)।

स्वामीजी पर ईट-पत्थरों की वर्षा होती थी, तलवारों के वार होते थे, गालियों की बौछारें होती थी, निन्दा और व्यंग्य बाणों के तीर चलते थे और हुल्लड़बाजी का हुड़दंग भी होता था। किन्तु स्वामीजी उनके उत्तर में ईंट-पत्थर, शस्त्र, गाली और निन्दा का कभी

www.thearyasamaj.org

प्रयोग नहीं करते थे, प्रत्युत्तर अहिंसा का अवलम्बन करते हुए उनके भले की ही कामना करते थे । परिणाम यह होता था कि लाखों पौराणिक उनके बताये मार्ग पर चलने लगे थे। स्वामी जी के व्याख्यानों, प्रवचनों, उपदेशों और लेखों से प्रभावित होकर नोनआर्यसमाजी भी उन पर, उनके बताये सिद्धान्तों पर फिदा हो जाते थे । स्वामीजी की निःस्वार्थ और अहिंसामयी देशोद्धार और मानव-सुधार सेवा से प्रभावित होकर और उनके प्रति प्रेम विह्वल होकर एक बंगीय विद्वान श्री देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय ने आज से सौ वर्ष पूर्व ई. सन् १६१६ में कहा था-''आप लोग दयानन्द के अनुयायी होने का दम्भ करते हैं । आप दयानन्द से प्रेम नहीं करते । क्या आप में से कोई उसके नाम पर मरने को तैयार है? मैं गर्व नहीं करता परन्तु आवश्यकता हो तो मैं दयानन्द के नाम पर अपना शिरश्छेद कराने में इतस्ततः नहीं करूगाँ।''(महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र भाग १, संग्रहकर्ता की भूमिका पृष्ठ ३)।

वास्तव में अहिंसा के साथ सेवा का भी सम्बन्ध है। सेवा में हिंसक विरोधी भी प्रशंसक और अनुगामी बन जाता है। स्वामीजी को एक साधु प्रति दिन गालियाँ दिया करता था। स्वामीजी शान्ति से उन्हें सुन लेते थे। एक दिन स्वामीजी को वे गालियाँ नहीं सुनाई दी। लोगों से पता लागा कि वह साधु बीमार हो गया है । इस पर स्वामीजी ने उस साधु के लिए कुछ फल और भोज्य पदार्थ भिजवाये । इस अहिंसामयी सेवा का यह प्रभाव पड़ा कि वह स्वामीजी का भक्त बन गया ।

इसी प्रकार मनुष्येतर हिंसक प्राणियों की भी कष्ट में सेवा की जाय, तो उन हिंसक प्राणियों की वैरभावना, हिंसकभावना उस सेवाभावी व्यक्ति के प्रति समाप्त हो जाती है । श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने अपने जीवन की एक घटना अपने जीवन चरित्र में इस प्रकार दी है-''अहिंसा की प्रबल विजय'' मैं बता चुका हूँ, कि मैं विचित्रनास्तिक था, जो योगाभ्यास और उसी विभूतियों पर विश्वास रखने वाला था और साथ ही हठ प्रक्रियाओं का प्रयोग भी करता था। बरेली में और वहाँ से लौटकर प्रयागमें कुछ विशेष परिश्रमकिया, परन्तु कुपथ के कारण बीमार हो गया। मैंने सुना कि त्रिवेणी पर झूंसी के जंगल में एक महात्मा रहते हैं, जिनके वश में एक शेर है। दिन को अन्तर्धान रहते हैं, केवल रात को उनके दर्शन हो सकते हैं । मैं अपने मित्र बुद्धसेन तिवारी सहित जिनको मेरी संगत से ही योग की ओर झुकाया था, सिदौसी भोजन से निवृत्त होकर शाम को पार उतर गया। इधर-उधर घूमते हुए दस बजे आश्रम के समीप पहुँचे। एक वृद्ध केवल कौपीनधारी महात्माको समाधिस्थ मैदान में बैठे देखा। तीन बजे तक न उनकी समाधि खुली और न ही हमारी आँख झपकी । तीन बजे के लगभग शेर की गरज सुनाई दी, फिर वह सीधा महात्मा की ओर आता दिखाई दिया। समीप पहुँचने पर उनके पैर चाटने लगा । महात्मा ने आँखें खोली, शेर के सिर पर प्यार का हाथ फेरा और कहा-''बच्चा ! आ गया, अच्छा अब चला जा।'' शेर ने सिर चरणों में रख दिया और उठकर जंगल की राह ली । उसी समय हम दोनों ने पैर छूकर महात्मा को प्रणाम किया और इस अद्वितीय विभूति पर आश्चर्य प्रकट

www.thearyasamaj.org

किया । महात्मा का उत्तर कभी नहीं भूलता-''यह कोई विभूति नहीं है । बच्चा! इस शेर के किसी शिकारी ने गोली मारी थी । इसके पैर में ऐसा घाव लगा कि वह चल नहीं सकता था और व्याकुलता से हृदय वेधक शब्द कर रहा था । शायद प्यासा था मैंने लाकर पानी पिलाया और जंगल से अपनी जानी हुई बूटी लाया और रगड़कर उसके पैर में लगाई । घाव अच्छा होने लगा । जब तक मैं दवाई लगाता रहता वह नित्य मेरे पैर को चाटता रहता। जब सर्वथा नीरोग हो गया तब भी उसका व्यसन नहीं छूटा। नित्य मेरी उपासना की समाप्ति पर आ जाता है । सुनो बच्चा! अहिंसा का अभ्यास और सेवा व्यर्थ नहीं जाते है'' । हम पर जो प्रभाव पड़ा, वर्णन नहीं किया जा सकता । मैंने अपने साधनों और बीमारी की कहानी सुनाई । महात्मा ने बतलाया कि हठयोग की क्रियाएँ शरीर के लिये हानिकारक सिद्ध होती हैं और कैवल्य के मार्ग से विमुख कर देती हैं । तुम राजयोग का अभ्यास करो और इनको छोड़ दो । बीमारी के दूर करने को उन्होंने ब्राह्मी बूटी एक विशेष सेवन बताया। (कल्याणमार्ग का पथिक पृष्ठ ४८-४६)

इस विवरण से स्पष्ट हो गया है कि अहिंसा तथा सेवा से जंगली पशु भी वैरभाव त्यागकर कृतज्ञता प्रदर्शित करते हैं । किन्तु कई लोग स्वामी श्रद्धानन्दजी की इस घटना को असत्य बताते हैं और कहते हैं कि शेर आदि हिंस्र पशु अपना वैरभाव नहीं त्याग सकते । इसमें पहली बात तो यह है कि बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द सन्यासी जैसा व्यक्ति झूठ क्यों लिखेगा । श्रद्धानन्दजी ने तो अपने जीवन चरित्र में अपनी चरित्र हीनता की बात भी स्पष्ट लिखी है । जबकि प्रायः लोग अपने जीवन चरित्र मेंअथवा संस्मरणों में अपनी बुराई प्रदर्शित करने से बचते है । श्रद्धानन्दजी ने तो स्वजीवन चरित्र (कल्याणमार्ग का पथिक) के आरम्भ में उसे 'ऋषि दयानन्द के चरणों में सादर समर्पण' लिखकर कुछ नीचे लिखा है- 'मैं क्या था इसे इस कहानी में मैंने छिपाया नहीं । मैं क्या बन गया और अब क्या हूँ? वह सब तुम्हारी कृपा का ही परिणाम है।' इसलिये स्वामी श्रद्धानन्दजी द्वारा उल्लिखित उपर्युक्त घटना को झूठ बताना पाप के समान है । दूसरी बातयह कि शेर आदि जंगली पशु वैरभाव छोड़ ही नहीं सकता, ऐसा कहना भी सर्वथा सत्य नहीं है । वे लोग हिंसक पशु आदि के हिंस्र भाव न छोड़ने के प्रमाण में पञ्चतन्त्र का एक श्लोक प्रस्तुत करते हैं-''**सिंहो व्याकरणस्य कर्त्तुरहरत् प्राणान् पाणिनेः, मीमांसाकृत मुन्ममाथ सहसा हस्ती मुनिं जैमिनिम्।। छन्दोज्ञाननिधिं जघान मकरो वेलातटे पिङ्गलमज्ञानावृतचेतसामतिरूषां कोऽर्थस्तिरश्चां गुणैः।**'' इस श्लोक के अनुसार व्याकरण प्रवक्ता पाणिनि को सिंह ने, मीमांसा दर्शन प्रवक्ता जैमिनि को हाथी ने और छन्दःशास्त्र प्रवक्ता पिङ्गलाचार्य को मगर ने मार डाला, इससे प्रतीत होता है कि जंगली हिंसक प्राणियों में निर्वैर भाव हो ही नहीं सकता ।

इस श्लोक के द्वारा प्रतिपादित विषय पर दो बातें विचारणीय है । पहिली यह कि यह श्लोक काल्पनिक कथाओं वाले ग्रन्थ पञ्चतन्त्र का है, किसी प्रमाणिक इतिहास ग्रन्थ का नहीं । उस ग्रन्थ में जनश्रुति से भी वैसा लिखा जाना सम्भव है, जैसे 'लक्ष्मण-रेखा' (न

www.thearyasamaj.org

तो वाल्मीकीय रामायण मेंऔर नहीं तुलसीकृत रामायण में ही लक्ष्मण रेखा का कोई उल्लेख है। किन्तु हिन्दी में राधेश्याम तर्ज वाली रामकथा में लक्ष्मण रेखा की कल्पना कर ली गई तो यह असत्य होते हुए भी प्रचारित हो गया और एक मुहावरा ही बन गया 'लक्ष्मण रेखा' । पञ्चतन्त्र के उपर्युक्त श्लोक का तथ्य इसलिये भी संदिग्ध है, क्योंकि इस श्लोक में जिस जैमिनि का हाथी द्वारा मारा जाना लिखा है, उस जैमिनि का महाभारत में आदिपर्व (५३.६), ६७-८६ सभापर्व (४.११) और शान्तिपर्व (४७.६) में उल्लेख है । किन्तु कहीं भी उसके हाथी द्वारा मरण की कोई चर्चा नहीं है । दूसरी बात यह है कि पाणिनि जैमिनि और पिङ्गलाचार्य व्याकरण मीमांसा और छन्दःशास्त्र में निष्णात होगें, किन्तु योगाभ्यास में तथा अहिंसा-प्रतिष्ठा-करण में उनका विशेष ध्यान नहीं रहा होगा अथवा किसी कष्ट-ग्रस्त हिंसक जन्तु की सेवा करने का उन्हें अवसर प्राप्त नहीं हुआ होगा, जैसा कि झूंसी के जंङ्गलवासी महात्मा को प्राप्त हुआ ।

युवा पिढ़ी ही राष्ट्र के निर्माण में सहायक-आचार्य आर्य नरेश

आर्य समाज महामन्दिर एवं क्रांतिकारी प. रामप्रसाद बिस्मिल आर्यवीर दल शाखा के शीतकालीन आर्य वीर दल शिविर में आचार्य आर्य नरेश जी (हिमाचल प्रदेश) ने बर्बादी (पतन)की और जा रही युवा पिढ़ी को ब्रह्मचर्य के रास्ते पर चलकर अपने जीवन को तेजस्वी और बलवान बनाने का संकल्प करवाया।

आचार्य ने बताया कि आज युवा पीढ़ी को अपने ब्रह्मचर्य में निहित तीन ब्रह्म का पालन जरुर करना चाहिए जिसमें प्रथम ब्रह्म ईश्वर जिसने समस्त संसार की रचना की। इसके लिऐ प्रातः ब्रह्ममुर्हुत में उठकर संध्या हवन व सांय काल में संध्या हवन व रात्रीकाल में सोने से पहले वेद मन्त्रों का पाठकर सोना, इस नियम से हमे ईश्वर को कभी न भुलकर स्मरण रहने की प्रेरणा मिलेगी दुसरा ब्रह्म ईश्वर द्वारा मनुष्य के लिए जन्म से लेकर सफल व उत्तम जीवन के लिए व मृत्यु पर्यन्त वेद के ज्ञान को प्राप्त करना व तीसरा ब्रह्म युवा को नियमित योग प्राणायाम व पोष्टिक आहार का सेवन कर शरीर से हस्ट-पुस्ट रह कर उत्तम आयु को प्राप्त करें।

आचार्य जी ने आर्यवीरों व वीरांगनाओं के उपस्थित अभिभावकों से अपने बच्चों को संस्कारित कर उनको उचित व्यवहार व दिनचर्या पर ध्यान रखना चाहिए।जोधपुर की समस्त आर्य समाजो के पदाधिकारी व सदस्य किशनसिंह गहलोत, कैलाश चन्द, यशपाल, श्याम आर्य, गजेन्द्रसिंह, गोपाल आर्य, श्रीमति यशोदा आसेरी,रुपवती देवड़ा एवं स्थानिय जन समूह की उपस्थिती सआदरणीय रही।

कार्यक्रम के अन्त में प्रधान हेमसिंह आर्य ने आचार्य जी का सम्मान कर सम्बोधित किया व सेवाराम आर्य ने सभी आगुन्तुको का धन्यवाद दिया।

प्रदीप आर्य
प्रचार मंत्री
आर्य समाज महामन्दिर जोधपुर

www.thearyasamaj.org

पांच महायज्ञ

तर्ज–मैं तो स्वामी दयानन्द का बांका वीर सिपाही हूँ ।

ऋषिवर देव दयानन्द की पद्धति हमें सिखलानी है ।
पांच महायज्ञों की महिमा घर–घर पहुंचानी है ।
पांच महायज्ञों की महिमा.........

प्रातः सायं सन्ध्या और स्वाध्याय वेद बतलाता है ।
यह है पहला महायज्ञ जो ब्रह्मयज्ञ कहलाता है ।
आत्म चिन्तन प्रभु मिलन की विधि अत्यन्त पुरानी है ।
पांच महायज्ञों की महिमा..........

देव यज्ञ है अग्निहोत्र और महायज्ञ यह दूजा है ।
इसी से होती है जड़ चेतन देवों की सच्ची पूजा है ।
नित्य नियम से किया करो यदि काया स्वस्थ बनानी है ।
पांच महायज्ञों की महिमा..........

महायज्ञ बलिवैश्वदेव को चौथा यज्ञ समझ लेना ।
पका अन्न पहले अग्नि और जीव जन्तुओं को देना ।
फिर आपस में बाँट के खाना प्रीत की रीत निभानी है ।
पांच महायज्ञों की महिमा..........

'पथिक' पांचवें महायज्ञ को अतिथियज्ञ कहते सारे ।
सन्यासी विद्वानों की घर पर सेवा करना प्यारे ।
जहाँ ये पांचों महायज्ञ हों वह घर स्वर्ग निशानी है ।
पांच महायज्ञों की महिमा..........

www.thearyasamaj.org

गंगा-तट पर सिंहनाद

-इन्द्र विद्यावाचस्पति

त्यागी दयानन्द हिन्दू जाति में फैली हुई कुरीतियों का नाश करने के लिए कटिबद्ध होकर गंगा-तट पर भ्रमण करने लगे। सुधार की पहली दशा में जो दृष्टि सम्प्रदाय की रेखाओं से परिमित थी, वह इस दूसरी दशा में आर्य, (हिन्दू) जाति तक विस्तृत हो गई। इस समय स्वामी दयानन्द के प्रोग्राम में सम्पूर्ण आर्य जाति के रोगो को नष्ट करना और धर्म के स्वरूप को प्रकाशित करना सम्मिलित हो गया था। जहां कहीं जाते थे, निम्नलिखित आठों गप्पों का खण्डन करते थे। यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस समय स्वामी जी प्राय: संस्कृत में ही व्याख्यान देते थे। गप्पें ये हैं:-(1) अठारह पुराण,(2) मूर्त्ति-पूजा, (3) शैव,शाक्त, रामानुज आदि सम्प्रदाय,(4) तन्त्र-ग्रन्थ, वाममार्ग आदि, (5) भंग, शराब आदि सब नशे की चीजें, (6) पर-स्त्री गमन, (7) चोरी, (8) छल, अभिमान, झूठ आदि। वे इन आठों गप्पों का खण्डन करते थे और यह उपदेश देते थे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की एक ही गायत्री हैं। इन तीनों वर्णों को गायत्री के पाठ का समान अधिकार है और उनमें से कोई वर्ण भी ऐसा नहीं जो यज्ञोपवीत का अधिकारी न हो।

इस समय के कार्यक्रम पर ध्यान देने से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं:-

1. इस समय स्वामी जी का कार्यक्रम खण्डनात्मक था। आर्य जाति की दुर्दशा देखकर स्वामी जी का हृदय रो रहा था। उनका परोपकारी आत्मा अपने स्वजातीयों की दशा देखकर शान्त नहीं रह सकता था। दु:ख का मूल बुराइयों में था, इस कारण आपने बुराइयों को तर्क और ज्ञान के दावानल से जला कर राख कर देने का निश्चय किया। आपके जीवन का खण्डन-युग कहा जा सकती है।

2. कार्यक्रम को देखने से यह भी स्पष्ट होगा कि स्वामी जी की दृष्टि जहां सम्प्रदायों की सीमा से बाहर जा चुकी थी, वहाँ अभी आर्य जाति की सीमाओं के अन्दर ही थी। इसका कारण यह नहीं था कि संसार के प्रति उनके हृदय में स्नेह का भाव नहीं था, या केवल आर्य-जाति को ही धर्म की अधिकारिणी समझते थे। इसका मुख्य कारण यह था कि किसी भी सुधारक को लीजिये, वह सार्वभौम सिद्धान्तों का प्रचारक होता हुआ भी अपने वातावरण के अन्दर ही रह सकता है। ईसा को एक सार्वभौम सुधारक कहा जा सकता है, परन्तु बाइबिल में यहूदियों के पादरियों के दुर्व्यवहारों का खण्डन है, भारतवर्ष के ब्राह्मणों या बौद्धों में प्रचलित रीतियों का खण्डन नहीं। चाहे मनुष्य कितना ही बड़ा हो, वह सार्वभौम सिद्धान्तों का प्रचार अपने दृष्टिक्षेत्र में आये हुए विषय की अपेक्षा से ही कर सकता है। उसकी बुद्धि वहीं तक फैल सकती है, जहां तक मनुष्य की बुद्धि का फैलना सम्भव है। इस समय तक स्वामी जी के दृष्टिकोण में आर्यजाति की आन्तरिक दशा ही आई थी। सार्वभौम सिद्धान्तों का प्रयोग करके स्वामी ने उस बिगड़ी हुई दशा के कारणों पर विचार किया, उनका अनुसंधान किया। जो उपाय उन्हें प्रतीत हुआ, उसका प्रयोग करने का यत्न किया। वह प्रयत्न इस समय प्रधानतया खण्डनात्मक था।

कौपीनधारी स्वामी दयानन्द हरद्वार से ऋषिकेश और लंढौरा होते हुए कर्णवास पहुँचे। हरद्वार के कुम्भ-पर्व पर प्रायः सारे देश के साधु और यात्री एकत्रित होते हैं। उन लोगों ने युवक संन्यासी के तेजस्वी भाषणों को और उनकी ख्याति को सुना था। वे लोग स्वामी जी के यश को उनके पहुंचने से पूर्व ही भिन्न-भिन्न स्थानों पर पहुंचा चुके थे। जहाँ स्वामी जी जाते, शीघ्र ही चारों ओर धूम मच जाती कि एक त्यागी संन्यासी आए हैं, जो धाराप्रवाह संस्कृत बोलते हैं, जिन्होंने हरद्वार में स्वामी विशुद्धानन्द जी से टक्कर ली थी, जो पुराण और मूर्त्तिपूजा आदि का खण्डन करते हैं। स्वामी जी गंगा के तट पर रेती में विश्राम करते थे। रात को बालू का सिरहाना बनाकर सो रहते, दिन में गप्पों का खण्डन करते और सदुपदेश देते। शीघ्र ही चारों ओर चर्चा फैल गई। गृहस्थ लोग स्वामी जी के उपदेशों को सुनते, पहले आश्चर्यित होते फिर सन्देह करने लगते। सन्देह-निवृत्ति के लिए अपने गुरु-ब्राह्मणों के पास जाते। वहाँ स्वामी जी के लिए गालियां तो मिलती, परन्तु सन्देह का समाधान न मिलता। पण्डित लोग स्वामी जी के सम्मुख आकर प्रश्नोत्तर करने का साहस न करते। अनूपशहर में पं.अम्बादत्त और पं. हीरावल्लभ पर्वती स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने आये। शास्त्रार्थ का उद्देश्य मूर्त्ति पूजा का खण्डन करना था, परन्तु फल उल्टा निकला। पं. अम्बादत्त ने स्वयं निरुत्तर होकर एक-दूसरे पण्डित जी की ओर निर्देश कर दिया और पर्वती जी ने पराजित होकर अपनी पहले की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार सामनी रखी हुई शालिग्राम की मूर्त्ति का गंगा में प्रवाह कर दिया। फिर क्या था, प्रजा ने मूर्त्तियां गंगा-प्रवाह के अर्पण कर दी। कण्ठियां तोड़ डाली गईं मानों अज्ञान को बहा दिया और बन्धनों को काट डाला। क्षत्रियों और वैश्यों के समूह आ-आकर स्वामी जी से गायत्री और यज्ञोपवीत का प्रसाद लेने लगे। गंगा-तट पर अखण्ड यज्ञ होने लगा, और सदियों से अधिकार-वंचित भारतीय प्रजा अपने धार्मिक अधिकारों को प्राप्त करके स्वामी दयानन्द का जय-जयकार करने लगी।

कुछ दिनों तक इसी प्रकार भ्रमण करके स्वामी जी 20 मई, 1868 के दिन फिर कर्णवास आए और अपनी कुटिया में आसन जमाया। स्वामी जी अत्यन्त निर्भय थे। यदि वे निर्भय न होते तो सुधार के इस काम में हाथ ही न डालते। सुधार का कार्य शेरों का है, गीदड़ों का नहीं। जो मनुष्य लोक-निन्दा से, किसी पागल के आक्रमण से या किसी शक्तिशाली के शस्त्र से डरता है, वह सदियों से जमी हुई कुरीति-रूपी काई को उखाड़ने का साहस नहीं कर सकता। कुरीति और रूढ़ि के कंटीले जंगलों को तर्क और सुबुद्धि के कुठार से वही काट सकता है, जिसके हृदय में वाणी या बाण का भय नहीं हैं। स्वामी दयानन्द ने सदियों से प्रचलित अन्ध-विश्वासों और रूढ़ियों के खण्डन का बीड़ा उठाया था, उन्होंने कुछेक महन्तों, पुरोहितों और टीकाधारियों द्वारा कुचले हुए जनता के अधिकारों को फिर से जगाने और अधिकारियों के फिर से सौंपने का संकल्प किया था। यदि ऋषि शेर न होता, तो भारत-भर के सम्प्रदायाचार्यों को न ललकार सकता था।

कर्णवास में स्वामी जी की निर्भयता का एक दृष्टान्त संघटित हुआ। बरेली के रईस राव कर्णसिंह गंगा-स्नान के लिए कर्णवास आये थे। कर्णसिंह वृन्दावन के वैष्णवाचार्य रंगाचार्य के शिष्य थे और तिलक-छाप लगाते थे। स्वामी जी की प्रसिद्धि सुनकर वे उनके स्थान पर पहुँचे। कर्णसिंह की प्रकृति बहुत

www.thearyasamaj.org

उग्र थी। उसने सुना था कि स्वामी जी तिलक-छाप का खण्डन करते हैं, इसलिए पहले से ही उसके क्रोध का पारा चढ़ा हुआ था। स्वामी जी ने आदरपूर्वक पास के आसन पर बैठने के लिए कहा। कर्णसिंह ने उत्तर दिया कि हम वहीं बैंठेंगे, जहां तुम बैठे हो। इस पर स्वामी जी ने जिस शीतल-पाटी पर वह बैठे थे, उसका कुछ भाग खाली कर दिया। यहाँ तो झगड़ा न बढ़ा। झगड़ा पैदा करने पर तुला हुआ कर्णसिंह निराश हुआ, तब नया ढंग आरम्भ हुआ।

राव साहब बोले- "तुम गंगा जी को नहीं मानते?"

स्वामी जी ने कहा- "जितनी गंगा जी है, उतनी मानते हैं।"

कर्णसिंह - "कितनी?"

स्वामी जी - "हम लोगों का तो गंगा जी कमण्डलु में हैं"

इस पर कर्णसिंह ने गंगा-स्तुति के कुछ श्लोक पढ़े।

स्वामी जी-"यह सब तुम्हारी गप्प है। वह केवल पीने का पानी है, उससे मोक्ष नहीं हो सकता, मोक्ष तो केवल कर्मों से होता है, तुमको पोपों ने बहकाया है।"

फिर स्वामी जी ने उसके माथे पर तिलक-छाप देखकर कहा- "तुमने क्षत्रिय होकर माथे पर यह भिखारियों का चिह्न क्यों धारण किया है?"

कर्णसिंह-"हमारे स्वामी के सामने आपसे बातचीत भी न होगी, तुम तो उनके सामने कीड़े के तुल्य हो, तुम-से उनके जूते उठाते हैं।"

स्वामी जी ने हंस कर उत्तर दिया-"अपने गुरु को शास्त्रार्थ के लिए बुलाओ, यदि उनमें आने का सामर्थ्य न हो तो हम वहाँ चलें।"

इस पर क्रोध में आकर कर्णसिंह बेतुकी बातें कहने लगा और स्वामी जी को धमकाने लगा। धमकी में आने वाले व्यक्ति दूसरे ही होते हैं। स्वामी जी ने धमकी के उत्तर में चंक्रांकित सम्द्रदाय का बड़े बल से खण्डन किया और अन्त में कहा-"तुम क्षत्रिय हो, जो रामलीला में लौण्ड़ों का स्वांग भरकर और महापुरुषों की नकल उतरवाकर उनको नचवाते हो। अगर तुम्हारी बहन-बेटी को कोई नचावे तो तुम्हें कैसा बुरा लगे।"

यह सुनकर कर्णसिंह की आँखे लाल हो गईं, नथुने फड़कने लगे और हाथ तलवार की मूठ पर गया। कर्णसिंह का एक पहलवान आगे बढ़कर स्वामी जी पर हाथ डालने लगा। ब्रह्मचारी दयानन्द ने एक झटके से पहलवान को दूर फेंक दिया, और केसरी के सदृश गरज कर कर्णसिंह से कहा-"अरे धूर्त, यदि शस्त्रार्थ करना है तो जयपुर और धौलपुर के राजाओं से जा लड़ो और यदि शास्त्रार्थ करना है, तो अपने गुरु रङ्गाचार्य को वृन्दावन से बुलवा लो।"

इतने में वहाँ उपस्थित जनता में से ठाकुर कृष्ण सिंह आदि राजपूत लट्ठ लेकर खड़े हो गए और कर्णसिंह को ललकारने लगे। कायर कर्णसिंह अपने पहलवानों के साथ वहाँ से चला गया।

www.thearyasamaj.org

बहुत-से लोगों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि इस घटना की सूचना पुलिस में की जाय। स्वामी जी ने स्मरणीय उत्तर दिया। आपने कहा- ''यदि वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो हम क्यों अपने संन्यास धर्म से पतिते होवें, सन्तोष करना ही हमारा परम धर्म है।''

इसके पीछे भी कर्णसिंह कई नीच उपायों से अपना क्रोध शान्त करने का यत्न करता रहा। स्वामी जी को मारने के लिए उसने कुछ बदमाश भेजे, योगी की हुंकार सुन वे इस प्रकार बेहोश होकर भागे कि गिर कर मरते-मरते बचे। कर्णसिंह ने कुछ वैरागियों को भी स्वामी जी को मारने के लिए तैयार करना चाहा, पर किसी की हिम्मत न पड़ी। आखिर बात बढ़ गई। स्वामी जी के भक्त राजपूतों ने लट्ठ लेकर कर्णसिंह के बंगले को घेर लिया और निकल कर लड़ने के लिए ललकारा। कर्णसिंह के श्वशुर ठाकुर मोहनसिंह ने उसे समझाया कि यदि खैर चाहते हो तो यहां से भाग जाओं। कायर कर्णसिंह दूसरे रोज कर्णवास से भाग गया और घर जाकर पागल हो गया।

कर्णवास से आसन उठा स्वामी जी चाशनी, ताहरपुर और अहार होते हुए अनूपशहर पहुँचे। जहां गए वहां मूर्त्ति-पूजा, मृतक श्राद्ध और फलित ज्योतिष आदि का खण्डन किया।

अनूपशहर में स्वामी जी लगभग चार मास तक रहे। जिन लोगों ने उस समय उन्हें देखा था, वे देर तक भी उस मूर्त्ति को न भूल सकें। लम्बा कद, सूडौल शरीर, चौड़ी छाती, सुन्दर और प्रभावशाली चेहरा, शेर कीआंख को झपका देने वाली आंखे, उन्नत और विशाल मस्तक-यह बनावट जिसने एक बार भी देखी, वह भला उसे कैसे भूल सकेगा। उस समय एक कौपीन ही स्वामी जी का परिच्छद था। सर्दी हो या गर्मी, आंधी हो या पानी, यही परिच्छद शरीर की रक्षा के लिए काफी था। प्रात:काल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर नित्यकर्म से निवृत्त होकर स्वामी जी समाधिस्थ हो जाते और घण्टों तक ध्यानावस्थित रहते। उसके पश्चात् एकत्र हुई प्रजा को धर्म का उपदेश देते। जो भिक्षा आ जाती, उसी से निर्वाह कर लेते। उपदेश प्रतिदिन होता था। पण्डित लोग अपने बाहुबल की परीक्षा के लिए आते, उनमें से कई शहर से बाहर ही रुक जाते, जो शहर में आते वे सामने आकर शास्त्रार्थ करने की अपेक्षा दूर से गाली-प्रहार करने में बहादुरी समझते। जो सामने आ जाते वे प्रत्युत्पन्न-बुद्धि, युक्तियुक्त भाषण और ब्रह्मचर्य के ओज से प्रदीप्त आँखों के सामने या तो सिर झुकाते या शीघ्र ही कोई बहाना बनाकर सरकने का उपाय ढूंढ़ते। पं. हीरावल्लभ और पं.टीकाराम मूर्त्ति-पूजक थे, कई बार स्वामी जी से भिड़े भी, परन्तु अन्त को शिष्य बन गए और मूर्त्तियों को गंगा में प्रवाहित कर दिया। उनकी देखा-देखी में अनेक गृहस्थों ने भी मूर्त्ति-पूजा को त्यागकर पूजा की सामग्री भागीरथी के पवित्र प्रवाह में अर्पण कर दी।

मूर्त्तियों का जलप्रवाह उन लोगों से न सहा गया, जिनकी उदर-पूर्त्ति का साधन ही मूर्त्ति-पूजा था। ब्राह्मण लोग नाराज हो गए और पराजित कायरों के हथियारों से कार्य लेना आरम्भ किया। स्वामी जी को एक ब्राह्मण ने पान में जहर दे दिया। स्वामी जी को पता चल गया और उन्होंने न्यौली कर्म द्वारा विष को शरीर से निकाल दिया। यह घटना वहां के तहसीलदार सैयद मुहम्मद को पता लग गई। वह स्वामीजी का

www.thearyasamaj.org

बड़ा भक्त था। उसे ब्राह्मण की दुष्टता पर बड़ा क्रोध आया। ब्राह्मण को उसने गिरफ्तार कर लिया और यह पूछने के लिए कि उसे क्या दण्ड दिया जाय, स्वामी जी के निकट आया। स्वामी जी उससे बोले नहीं। वह आश्चर्यित हुआ और रूष्टता का कारण पूछने लगा। स्वामी जी ने उस समय जो उत्तर दिया, वह उनके सारे जीवन की चाबी है, और प्रत्येक हृदय में अंकित करने योग्य सन्देश है। उत्तर निम्नलिखित है:-

''मैं संसार को कैद कराने नहीं आया हूं, वरन् कैद से छुड़ाने आया हूँ। यदि यह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें ?''

अनूपशहर से प्रस्थान कर स्वामी जी अतरौली, जलेसर व गढ़िया, सोरों, पीलीभीत, शाहबाजपुर, ककोड़े घाट, नरौली, कायमगंज आदि में प्रचार करते हुए फर्रुखाबाद पहुंचे। मार्ग में कई स्थानों पर शास्त्रार्थ और विचार हुए। प्रचार का अखण्ड क्रम जारी रहा। सोरों में पं. अंगद शास्त्री से शास्त्रार्थ हुआ। पं. अंगद शास्त्री की इस प्रदेश में बड़ी मान्यता थी। वह उस घेरे के प्रधान मल्ल समझे जाते थे। अंगद शास्त्री ने देर तक शास्त्रार्थ करने के पीछे स्वामी जी के कथन की सत्यता स्वीकार कर ली और अनुयायी बन गया। तब तो चारों ओर सुधार की बाढ़-सी आ गई। लोग धड़ाधड़ मूर्त्तियों का प्रवाह करने लगे, कण्ठियां टूटने लगीं और स्वामी जी का जय-जयकार चारों ओर गूंजने लगा। जब स्वामी जी शाहबाजपुर में थे, तब उन्होंने दण्डी विरजानन्द जी के देहावसान का समाचार सुना। स्वामी जी को बड़ा दु:ख हुआ। वे अपेन गुरु के बड़े भक्त और सच्चे शिष्य थे। उन्हें दण्डी जी के शिष्य होने का अभिमान था। समाचार सुनकर स्वामी जी के मुंह से हठात् ये शब्द निकले -''आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया।'' स्वामीजी का व्याकरण के सूर्य के प्रति इतना श्रद्धाभाव यथार्थ ही था। स्वामी जी ने जो बड़ा कार्य धर्म के लिए किया, उसकी प्रेरणा उन्हें दण्डी जी से ही मिली थी। यह ठीक है कि उनमें बीज-रूप से विद्या और अनुभव की सब शक्तियां विद्यमान थीं, परन्तु बीज को सींचने वाला माली विरजानन्द ही था। दण्डी जी के स्वभाव के विषय में कई प्रकार की सम्मतियां हो सकती हैं। वह आदर्श नहीं था। दण्डी जी के हृदय में सुधार का सारा क्रम भी निश्चित रूप से विद्यमान नहीं था। परन्तु उनका अगाध पाण्डित्य, आर्ष ग्रन्थों में अभिरूचि और रूढ़ि को न मानने की ओर प्रवृत्ति, ये गुण थे, जिन्होंने योग्य शिष्य के हृदय में विद्यमान बीज को भली प्रकार सींच कर हरे-भरे कल्पद्रुम के रूप में परिणत कर दिया।

फर्रुखाबाद में स्वामी जी बहुत देर तक रहे। वहां भी बड़े बल से कुरीतियों का खण्डन किया गया और द्विजों को यज्ञोपवीत तथा गायत्री का प्रदान किया गया। पं. गोपाल, जिसका साहस योग्यता की अपेक्षा सैकड़ों गुणा अधिक था, शास्त्रार्थ करने के लिए आया। बेचारा शास्त्रार्थ-गुरु से क्या टक्कर लेता। शास्त्रार्थ में पराजित हुआ, परन्तु साहस ने उसका साथ न छोड़ा। वह भागा हुआ बनारस गया और कुछ पण्डितों से मूर्त्ति-पूजा के पक्ष में व्यवस्था ले आया। वह व्यवस्था फर्रुखाबाद में डंके की चोट सुनायी गई। परन्तु कुछ भी असर न हुआ। होता भी कैसे ? सब लोग व्यवस्था का मूल्य जानते थे।

व्यवस्था का भी कुछ प्रभाव न होता देख, ब्राह्मणों तथा तान्त्रिकों ने कानपुर से पं. हलधर ओझा को

www.thearyasamaj.org

बुलवाया। पं. हलधल ओझा व्याकरण के अच्छे पण्डित थे, उन्हें धर्म के विषय में कुछ अधिक ज्ञान नहीं था। शास्त्रार्थ धर्म विषय पर था। ओझा जी उसे व्याकरण पर खींच ले गए। उन्हें यह ज्ञात नहीं था कि स्वामी जी व्याकरण के भी अपूर्व पण्डित हैं। व्याकरण में भी पं. हलधर ओझा की हार हुई। उपस्थित पंडितों ने इस बात को स्वीकार किया। तब तो स्वामी जी का प्रभाव और भी अधिक बढ़ गया। फर्रुखाबाद के कई भक्त सेठों में वेद-वेदांग की शिक्षा के लिए एक पाठशाला स्थापित करा दी। मूर्त्तिपूजा, मृतक-श्राद्ध आदि से लोगों की श्रद्धा उड़ गयी और गली-गली, कूंचे-कूंचे में पाठशालाओं के बालक तक स्वामी जी से सुनी हुई युक्तियों को दोहराकर पुराने पण्डितों का नाकों दम करने लगे।

फर्रुखाबाद में अनेक स्थानों पर भ्रमण करते हुए स्वामी जी कानपुर पहुंचे और गंगा-तट पर आसन लगाया। जैसे मधु की प्यासी मधु-मक्खियां दूर-दूर से आकर फल के इर्द-गिर्द घूमने लगती हैं, उसी प्रकार उस जागृति काल की उतावली जनता धर्म की प्यास बुझाने के लिए विश्रान्त घाट की ओर उमड़ने लगी। पौराणिक-मण्डल में हलचल मच गयी। धनी साहूकारों ने बहुत-सा धन व्यय करके पण्डितों का जमाव किया। फर्रुखाबाद की चोट से घायल पं. हलधर ओझा अपनी नष्ट हुई कीर्ति को फिर से स्थापित करने के लिए दल-बल सहित उपस्थित हो गए। बड़ा भारी जमाव हुआ। कानपुर के ज्वाइंट मैजिस्ट्र मि. डब्ल्यू. थैन सभापति के आसन पर बिठाये गए। लगभग 50 हजार मनुष्यों की भीड़-भाड़ में स्वामी जी में और पं. हलधर ओझा मे शास्त्रार्थ हुआ।

शास्त्रार्थ का विषय मूर्त्ति-पूजा था। पर हलधर ओझा ने महाभारत के कुछ श्लोक पढ़कर कहा कि भील ने द्रोण की मूर्त्ति बनायी थी। इस पर स्वामी जी ने उत्तर दिया कि भील कोई वेदज्ञ ऋषि नहीं था, वह एक अनपढ़ आदमी था, उसका कार्य सब के लिए प्रामाणिक नहीं हो सकता। इसी प्रकार शास्त्रार्थ जारी रहा, अन्त में सभापति को निश्चय हो गया कि स्वामी जी का कथन ठीक है, और पं. हलधर ओझा केवल समय बिता रहे हैं। वे स्वामी जी की विजय की घोषणा करके सभा से उठ गए। सभापति के उठ जाने पर लोगों में हल्ला मच गया और 'बोल सनातन धर्म की जय' का पौराणिक धर्म के विजय तथा पराजय का सूचक एक ही नाद आकाश में गूंजने लगा। थोड़े दिनों पीछे मि. थैन ने एक लिखित चिट्ठी कुछ सज्जनों को दी जिसमें लिखा था कि शास्त्रार्थ के समय मैंने दयानन्द फकीर के पक्ष में व्यवस्था दी थी, मुझे विश्वास है कि उनकी युक्तियां वेदानुकूल थीं।

www.thearyasamaj.org

गतांग से आगे

आर्यसमाज के स्वर्णिम सिद्धान्त

पाँचवाँ नियम

धर्मानुसार आचरण

-स्वामी जगदीश्वानन्द सरस्वती

सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाच सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।

(?)यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्।। —ऋ.७।१०४।१२

उत्तम विज्ञान को जानने की इच्छावाले मनुष्य के प्रति सत्य और असत्य वचन एक-दूसरे को दबाते हुए आते हैं। उनमें से जो सत्य और अधिक सरल होता है, ज्ञानी उसको ही पसंद करता है और असत्य को मार देता है।

मनुष्य को प्रत्येक कार्य भली-भाँति सोच-विचार कर, सत्य और असत्य का पूर्णरूपेण विवेक करके करना चाहिए। सत्य की कसौटी से परख कर, विवेक-बुद्धि द्वारा जो भी कार्य किया जाएगा वह कार्य धर्मानुसार ही होगा। इस नियम में "सत्य असत्य को विचार कर करने चाहिए" यह पद बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। यह पद सूचित करता है कि हम अपनी बुद्धि पर ताला न लगा दें; अपितु जो कार्य करें बुद्धिपूर्वक करें, परम्परागत अनुभवों से लाभ उठाएँ, परन्तु अन्धाधुन्ध उनके दास न बन जाएँ। यह कुआँ हमारे पिता ने बनाया था और वे इसका खारी पानी पीते थे, इसलिए हम भी खारा पानी न पीते रहें। यह नियम शिक्षा देता है कि हम लकीर के फकीर न बनें।

धर्मानुसार कार्य करने के लिए हमें धर्म के स्वरूप को जानना होगा। धर्म क्या है? "धारणाद् धर्म मित्याहु:" जो धारण किया जाए उसे धर्म कहते हैं।

वैशेषिक-दर्शन के अनुसार भी जिन नियमों के पालन से इहलौकिक और पार-लौकिक उन्नति हो उन नियमों का नाम ही धर्म है। वे नियम क्या हैं, वे कौन से गुण है जिन्हें जीवन में धारण किया जाए। वे नियम हमें वेद के स्वाध्याय से ज्ञात होंगे क्यों कि "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" (मनु.२।६) वेद समस्त धर्मों के मूलस्रोत हैं। जो वेद-विहित कर्म हैं उन्हीं का पालन करना धर्म है।

धर्म की बड़ी महिमा है। महाभारत में कहा है—

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं, जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः।

नित्यो धर्मः सुखदुःख त्वनित्ये, जीवो नित्यो हेतुरस्यत्वनित्यः।।

—महा.उद्यो.४०।१३

किसी कामना से, भय से अथवा लोभ से धर्म का त्याग न करे। चाहे प्राण चले जाएँ, परन्तु धर्म को कभी न त्यागें। क्योंकि धर्म नित्य है, सुख दुःख तो अनित्य है। जीवात्मा नित्य है किन्तु इसका साधन शरीरादि अनित्य है। अनित्य को छोड़कर नित्य में प्रतिष्ठित होना चाहिए।

www.thearyasamaj.org

आपत्ति और संकटों के आने पर भी धर्म से विमुख नहीं होना चाहिए, अपितु धर्माचरण और धर्म की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।। —मनु.८।१५

मारा हुआ धर्म मार देता है और रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है अत: धर्म को न मारना चाहिए, जिससे मारा हुआ धर्म हमें न मार दे।

यह नियम समाज में सुख और शान्ति की गंगा बहाने का साधन है। यदि मनुष्य अपने कर्त्तव्य को समझकर इस नियम का ही पालन करने लग जाए तो कुछ ही समय में संसार में छल, कपट, चोरी, घूसखोरी आदि सारी कुप्रथाएँ दूर होकर देश पुन: स्वर्गधाम बन जाए।

ये प्रथम पाँच नियम मनुष्य की व्यक्तिगत उन्नति से सम्बन्ध रखते हैं और प्रत्येक व्यक्ति को सर्वाङ्गीण नैतिक और चारित्रिक विकास करने का आदेश देते हैं।

दिनांक-19.12.2016

आर्य समाज महर्षि पाणिनिनगर के द्विवार्षिक चुनाव सम्पन्न

महर्षि दयानन्द स्मृति न्यास के मंत्री श्री किशनलालजी आर्य व श्री मदनलाल जी तंवर के चुनाव अधिकारी के सानिध्य में चुनाव सम्पन्न हुए जिसमें निम्न पदों पर पदाधिकारी सर्वसहमति से निर्वाचित हुए। तथा महर्षि दयानन्द के मिशन को आगे बढ़ाने का दृढ़संकल्प लिया।

1 कैलाश चन्द्र आर्य -प्रधान
2 करणसिंह भाटी,सोहनसिंह गहलोत- उप्रधान
3 शिवराम आर्य-मंत्री
4 सोहनसिंह भाटी-उपमंत्री
5 दाऊलाल जी परिहार -कोषाध्यक्ष
6 रमेश जी गहलोत-लेखानिरीक्षक
7 महेश परिहार-आर्य वीर दल अधिष्ठाता
8 सरोज भाटी-पुस्तकालपाध्यक्ष
अन्तरंग सदस्य-गजेन्द्रसिंह सांखला,धीरेन्द भाटी,नरेन्द्र आर्य,बलवीर परिहार कैलाश गहलोत,मदनलाल तंवर,प्रताप जी देवड़ा,श्रीमति सन्तोष आर्या
संरक्षक-सवाई सिंह भाटी,चेतनप्रकाश आर्य,किशनसिंह गहलोत,पुरुषोतम जी जांगिड़

शिवराम आर्य
मंत्री
आर्य समाज महर्षि पाणिनि नगर पूजला जोधपुर।
मो. 9928109982,9414678199

www.thearyasamaj.org

गतांग से आगे

दयानन्द बावनी

(दुलेराय काराणी)

सहिष्णुता

सत्य को प्रकाश ना सोहात अन्ध उलूक को,
असत्य–निवास, अंधकार–वास जाको है;
सत्यनिष्ठ स्वामीजी ने, केते केते पाये कष्ट,
ठार मारने को कोई, ताडने को ताको है;
बरसाया कीचड़ पत्थर का काहु ने मेह,
उड़े हैं उपान कहीं असि को कडाको है;
ठेर ठेर सहिष्णुता, धारत धरणी सम,
धन्य दयानन्द! धन्य तेरी अहिंसा को है; (३५)

शास्त्रार्थ–विजय

अनूपशहर वाले, शास्त्री हीरावल्लभ ने,
शास्त्रार्थ विवाद काज, सभा को बुलाई है;
"सभा बीच रखी प्रतिमा को स्वयं महर्षि के,
हस्त से धराऊँ भोग", यही बात ठाई है;
चले शास्त्र अर्थ स्वामीजी के शब्द बाण चले,
वेद धर्म की वहीं विजय दिखलाई है;
पलटे पण्डित वो ही , आप आर्यवीर हुए,
उसी मूरति को जाके ,गंगा में बहाई है;(३६)

जेते नभ तारे हैं

दलित–तारक, सारे समाज के सुधारक,
आर्य–नारी उद्धारक, अनाथ उबारे हैं;
थापे आर्य–शिक्षण के, केते केते गुरुकुल!
जाति पांति, जड रूढ़िबन्धन बिहारे हैं;
स्वराज–स्वदेशी–प्रेमी परम देश भक्त तूने,
सर्वांग समाज के प्रदीप्त कर डारे हैं;
'काराणी' कहत, गुन–गिनती करी न जात,
एते उपकार तेरे, जेते नभ–तारे हैं(३७)

www.thearyasamaj.org

दयानिधि

जोधपुरपति को, सुबोध दयानन्द देत,
राज–गनिका का दिल,द्वेष ने जला दिया;
महर्षि के पाचक को, कीनो वश कामिनी ने,
हलाहल विष पयपान में पिला दिया;
वो ही पापी पातकी को, स्वामी जी ने ही स्वयं,
चुपके बिदाय किया, दाम भी दिला दिया;
'काराणी' कहत दयानिधि दयानन्द जी ने,
खुद खूनी जनूनी जालिम को जिला दिया(३८)

अन्तिम बिदा

आये अजमेर वहाँ, जहर ने लिये घेर,
वैदो नारायणो हरिः,ऐसो वक्त आयो है;
अन्तिम बिदाई को, दीपावलि अन्तिम दिन,
दीपन को दिन आज, शोक में समायो है;
बीसवीं सदी के बस चालीसवें वर्ष आज,
दीपमालिका में देश दीप बुझायो है;
ज्योतिवक्त भारत में, ज्योति के जगाय दीप,
परमज्योति में, आत्मज्योति को मिलायो है (३६)

भारत के शेर

दीनानाथ की दया से, आये दयानन्द देव,
दीन–हीन देश के, सुवर्ण के सुमेर थे;
वेदधर्म–व्याप्त, सेवाधर्म में समाप्त हुए,
आप्त हु के आप्त, वे गैरों के लिये गैर थे;
सत्य के सुमित्र आप, असत्य के शत्रु आप,
पाप–ताप ,कपट, कुटिलता पै कहेर थे;
दिव्य दृग–तेज, मेघ–गर्जना–सा सिंहनाद,
वीर दयानन्द भूमि भारत के शेर थे (४०)

(क्रमशः)

www.thearyasamaj.org

आर्यसमाज सूरसागर जोधपुर का वार्षिकोत्सव हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ

आर्यसमाज सूरसागर जोधपुर का वार्षिकोत्सव पौष कृष्ण १३ से अमावस्य सं २०७३ सोमवार से गुरूवार दिनांक २६ से २९ दिसम्बर २०१६ तक उत्साह और उमंग से मनाया गया । चार दिवसीय वार्षिकोत्सव में प्रथम दिन सवेरे ८ बजे हवन कर ९ बजे झंडा रोहण कर कार्यक्रम शुरू किया गया । मंच संचालन श्री रामनारायणजी शास्त्री द्वारा प्रारंभ में भजनोपदेशक को आमंत्रण किया । भजनोपदेशक ने देश एवं गृहस्थी पर मन लुभावने, आर्यजगत के उत्थान, एवं वैदिक धर्म पर प्रस्तुतियाँ दी । ततपश्चात् आर्य जगत् के ओजस्वी और क्रांतिकारी विद्वान् आचार्य नरेशजी ने सहभागी आर्य जनों हृदयसार्थी, सारगर्भित, जागृतिकारक एवं सुख-शांति-समृद्धिमूलक व्याख्यानों से झकझोरा। उन्होंने बताया कि एक अगोचर निराकार परमात्मा बिना शरीर धारण किए सृष्टि रचाता, टिकाता और मिटाता है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण आदि सुभक्त महापुरूष साधना में जिसका ध्यान करते हैं वहीं ''ओ३म्'' निजनाम धारी परमात्मा ही एक मात्र उपास्य है । शारीरधारी तो उसके भक्त हैं । हम भक्तों को आराध्य बनाकर और आराध्य की अवमानना कर रहे हैं । परमात्मा में कहीं भी कोई असत्य नहीं है । इसलिए उसके व्रत समय पर पूर्ण होते हैं । उसी ने हमें ऋषियों के माध्यम से वेदरूपी ज्ञानामृत दिया है । उन्होंने पूछा कि जब हम आत्मा की मूर्ति नहीं बना सकते तो परमात्मा की मूर्ति कैसे बना सकते हैं ?

परिवार को समाज व राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण इकाई बताते हुए उन्होंने कहाकि ''विवाह नाम विशेष कर्तव्यके वहन करने का है जो परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति होता है । संस्कार तीन पीढ़ी पहले से चलते हैं और वे ही तीन पीढ़ी बाद तक जाते हैं । परिवार के दादा दादी यह जिम्मेवारी उठाएँ और आगे तीन पीढ़ी तक उत्तम संस्कार ले जाने वाली पीढ़ी तैयार करें तो परिवार, समाज व राष्ट्र उन्नत ही होंगे । बालक तो पशु होता है अर्थात् देखकर सीखता है । वही भावी राष्ट्र है जो माता-पिता, दादा-दादी की गोद में बनता है । संतान निर्माण ही राष्ट्र निर्माण है । समाज में जो निर्धन परिश्रम न करे और जो धनी दान न दे, वे समाज के शत्रु हैं । जो लोग सेवा-निवृत्त हो चुके हैं वे परिवार का भोजन पाकर अब समाज की सेवार्थ समय दे । सब बालकों को संस्कारित करें और वैदिक धर्मामृत का पान सबको कराने का बीड़ा उठाएं । युवक और युवतियाँ स्वतन्त्रता के 'स्व' की पहचान करते हुए अपनी संस्कृति, सभ्यता और विरासत को अपनाने का संकल्प करें और पूरी स्वतन्त्रंता के लिए संकल्प कर संघर्ष को तत्पर हो । आर्यसमाज के अतिरिक्त अन्य कोई भी इस कार्य को कर नहीं सकता अत: आर्यसमाज को तन, मन, धन अर्पित करें ।

महिला कार्यकर्त्ताओं का कार्यक्रम भी बड़ा ही सफल रहा जिसमें महिला प्रधान ज्योति सोलंकी, स्नेहलता गहलोत, सरस्वती गहलोत, भारती गहलोत आदि कई महिलाओं की मुख्य भूमिकाएं रही । अन्त

www.thearyasamaj.org

में आर्य किशनलाल गहलोत सूरसागर आर्यसमाज के प्रधान एवं मंत्री महर्षि दयानन्द सरस्वती न्यास भवन ने सम्मेलन में पधारे सभी आर्यजनों एवं मेहमानों का आभार प्रकट किया एवं आर्यसमाज की गतिविधियों पर प्रकाश डाला ।

आचार्य आर्य नरेशजी गुरूवार की शाम को महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन में जोधपुर की आर्यसमाजों के पदाधिकारियों के साथ चर्चा की । शुक्रवार को उन्होंने क्रांतिकारी रामप्रसाद बिस्मिल शाखा में आर्यवीरों को संबोधित किया एवं न्यूलाईट वर्क्स में कर्मचारियों को ज्ञानवर्षा से लाभान्वित किया।

स्वामी श्रद्धानन्द जी को आर्यजनों ने दी श्रद्धांजलि

आर्य समाज मन्दिर, महर्षि पाणिनि नगर के सानिध्य में स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के अवसर पर जोधपुर के सभी आर्य समाजों के सहयोग से स्वामी श्रद्धानन्द के कार्यो को जीवन का आदर्श बनाकर राष्ट्र निर्माण में समर्पण भाव से सहयोग करने का दृढ़ संकल्प लिया इस अवसर पर विक्रम जी आर्य, मदनजी तंवर ने भजनों के माध्यम से अपने विचार वक्त किये, रुपवती देवड़ा जी ने स्वामी जी के जीवन पर, राधेश्याम जी आर्य ने कविताओं के रुप में क्रांन्तिकारी रचनाओं से सभी को आनन्दित कर दिया, गौरव आर्य ने नवयुवकों को मिडिया द्वारा प्रचार करना, चारों वेदो को अपने इंटरनेट वेबसाईट के माध्यम से प्रचार कर रहे है कमलकिशोर जी आर्य ने स्वामी जी के जन्म से लेकर उनकी जीवनी पर प्रकाश डाला उनके कार्यो को बड़े विस्तार सें बताया, सेवाराम जी ने स्वामी जी के व्यक्तित्व को देखते हुऐ सभी आर्य वीरों की जरुरत है कि उनके कार्यो को पूर्ण करने के लिए तैयार होना उन्होने एक मुस्लिम राष्ट्र की अपने ऊपर जो बीती वह दृष्ट्रान्त सभी को बताया की एक आर्यवीर जो उस देश को सबको हिला दिया और मौत से नही डरा, पारितोषिक ईनाम भी वापिस लौटा दिया यह एक आर्यवीर की पहचान है। इस कार्यक्रम में दाऊलालजी, सोहनसिंह, धीरेन्द्र भाटी, संतोष आर्या, सरोज, ममता आर्या, चन्द्रप्रकाश जी, सवाईसिंहजी, हेमसिंहजी, डी.पी.शर्मा, देवीलाल, भीखारामजी, रामरतन, नरेन्द्र जी, चेतनप्रकाश जी, किशन बाबूजी, ओम जी, सुन्दरसिंह, जगदीश देवड़ा, अश्विनीजी, तीर्थलालजी, महेश परिहार, गंगासिंह, अदिति आर्या, रविश, पंकज, प्रताप जी और रामप्रसाद बिस्मिल शाखा के आर्य वीर उपस्थित थे अन्त में कैलाश चन्द्र आर्य (प्रधान) ने धन्यवाद व आभार प्रकट किया। कार्यक्रम का संचालन शिवराम आर्य मंत्री ने किया।

शिवराम आर्य
मंत्री
आर्य सामज मन्दिर, पाणिनि नगर

www.thearyasamaj.org

आर्यसमाज महामन्दिर में आचार्य श्री आर्य नरेशजी द्वारा ज्ञानवर्षा करते हुए

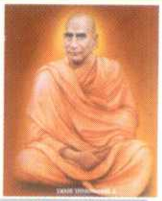

आर्य समाज मन्दिर, महर्षि पाणिनि नगर

स्वामी श्रद्धानन्द जी के बलिदान दिवस पर
श्रद्धांजलि स्वरुप विचार व्यक्त करते हुए
25.12.2016

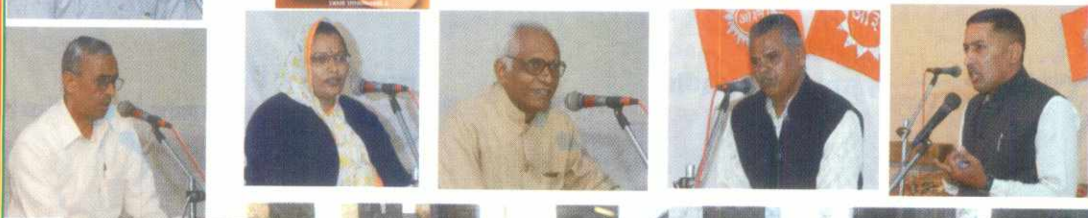

आर्यसमाज महर्षि पाणिनि नगर में द्वि-वार्षिक चुनाव में सर्व सम्मति से चुने गये पदाधिकारीगण

www.thearyasamaj.org

Postal Reg. Jodhpur/434/2015-17

Date Of Posting 9,10-01-2017

Date Of Print 5-01-2017

"सर्वतन्त्र सिद्धान्त" अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से सब मानते आये, मानते हैं, और मानेंगे भी । इसीलिये उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके । यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिस को अन्यथा जानें वा मानें उस का स्वीकार कोई भी बुद्धिमानी नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारी, परोपकारक पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सब को मन्तव्य और जिस को नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता । अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिन को मैं भी मानता हूँ, सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ ।

मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सब को एक सा मानने योग्य है । मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभिष्ट है । यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो-जो आर्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल चलन है उस का स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उन का त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है ।

सत्वाधिकारी महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास के लिए प्रकाशक व मुद्रक विजयसिंह भाटी द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मृति भवन न्यास, महर्षि दयानन्द मार्ग, मोहनपुरा पुलिया के पास जोधपुर (राज.) से प्रकाशित एवं सैनिक प्रिण्टर्स, मकराणा मौहल्ला केरू हाऊस जोधपुर फोन 9829392411 से मुद्रित ।

सम्पादक फोन नं. 0291-2516655